पहली बार
१९४१
एक हजार

प्रकाशक
नवयुग - ग्रंथ - कुटीर,
बीकानेर

मुद्रक
सेठिया जैन प्रिंटिंग प्रेस,
बीकानेर

स्वर्गीय शरत् बाबू की स्मृति
को

भाभी

: १ :

छोटी भाभी की जान संकट में है। विना पूछे दिया जला देने से सरसों का मँहगा तेल फुंक जाता है, पूछ कर जलाने की चतुराई दिखाने से आँखें रखते हुए भी उनके न होने का उलाहना मिलता है। चुपचाप बैठी रहने का एक रास्ता है, पर वह भी निष्कंटक नहीं। तब 'अँधेरे की रानी' की उपाधि मिलती है। उनके गरीब माँ बाप की असमर्थता पर तरस खाया जाता है, कि उन्होंने इतना भी सलीका सिखाकर अपनी लाड़ली को नहीं भेजा, जो अँधेरे घर में दिया-बत्ती कर सके।

अपने घर के इस संसार के संबंध में जिसने शासन की इतनी तत्परता सिखाई है, उसीने अगर बड़ी भाभी को छोटी भाभी बनाया होता तो एक दिन में दो महाभारत

से कम न होते। छोटी भाभी तो जैसे बर्फ की डली हैं। सदा ही शीतल और शान्त। तेजी और तड़प का तो नाम नहीं। कटुता को कटुता ही नहीं समझतीं। गालियों को शर्बत की तरह पी जाती हैं। लाल और तिरछी आँखों को, व्यंग्यपूर्ण कटाक्षों को, मीठी--मधुर मुस्कराहट में छिपा लेती हैं। उनके माथे पर बल, मुख पर अपमान की व्यथा, कभी देखने में नहीं आई। उधर बड़ी भाभी प्रतिद्वन्दिता का अखाड़ा सूना देखकर मोमबत्ती की तरह जल-जलकर आप ही क्षीण होती जा रही हैं। मँझली भाभी के प्रतिरोध ने उनके युद्ध-कौशल को माँज-माँजकर चमकाये रक्खा था, उनकी कला की निपुणता में जंग न लगने दी थी, दुर्भाग्य ने उन बेचारी को दुनियाँ से ही उठा लिया। उनकी मृत्यु का दुख और किसीलिए न सही तो इसलिए बड़ी भाभी को थोड़ा नहीं है। अब टक्कर लेने वाला ही कौन रह गया? छोटी भाभी से आशा थी; पर ये बेचारी मिट्टी का लोंदा बनकर आईं। वे अगर दिन को रात कहें, तो इन्हें कुछ नहीं। वे अगर रात को प्रभात कहें तो इन्हें कुछ नहीं। आने के दिन से इन्होंने उन्हें गृहस्वामिनी, अपने को क्रीतदासी, समझकर ही अपना कार्य आरंभ किया है।

बड़ी भाभी के लिए इनका यह स्वभाव अच्छा नहीं है, इसीसे वे इन्हें बात बात में छेड़ती हैं; सहेजती हैं।

में छिद्रान्वेषण करती हैं। व्यंग्य करती हैं, ताना मारती हैं। खुद सुई पकड़ना नहीं आता है; पर इनके किये सलमा सितारे के कामों में नुक्स निकालती हैं। माँ-बाप तक चलकर उनके आवेश को जगाना चाहती हैं; पर कुछ होता नहीं। वह मर्मस्थल मिलता ही नहीं जिस पर चोट करने से इनमें उफान आये। उनके प्रचण्ड रोष के ऊपर वर्षा की बूंदों की तरह यह जो अपनी मुस्कान-माधुरी बखेर कर शांत भाव से अपने काम में लगी रहती हैं, वह भी अनेक बार निर्लज्जता की उपाधि से भूषित हो चुकी है।

पांचवाँ दिन है बर्फ की वह डली एकाएक गलने लगी। मुस्कान ही जिन होठों पर खेलती थी, हँसी ही जिन गालों पर थिरकती थी, वे अचानक व्यथा और आंसुओं से तर हो गए। एक दिन इनके सिये हुए झालरदार सलूके को बड़े भैया के सामने बड़ी भाभी ने मोरी में फेंक दिया था और कहा था—मुझे कँगली गँवार समझ रक्खा है। यह सलूका मैं पहनूंगी? दरजी बुला दो, मैं उससे बनवा लूंगी।

भैया ने समझाया, पर वे कब मानी थीं। उसी समय दरजी ने आकर उस तिरस्कृत सलूके को सुंदरता के विशेषण से भूषित करके अपनी ज्ञान-गरिमा को खोया था। उस दिन भी गर्व या व्यथा किसी ने छोटी भाभी

के अंतःकरण को आंदोलित नहीं किया था। किंतु न जाने कैसे सोमवार की उस सध्या को जो नहीं होना चाहिए था वह हो गया। छोटी भाभी ने आंसुओं की नदी बहा कर क्या नहीं डुबो डाला ?

अब सुनिये वह बात। तीसरा पहर ढल रहा था। मीठी मीठी धूप इस तरह खिसकती जा रही थी, जैसे कोई फैलाई हुई साड़ियों को तहाने के लिए खींच-खींचकर रख रहा हो। हवा के तीखेपन से चोट खाकर तुलसी का पौधा तीन तीन बल खा रहा था। सुधा ने कहीं से आकर झूलते हुए पौधे की तीन डालें तोड़ डालीं और उन्हें लेकर एक ओर बैठ गई। उसकी एक एक पत्ती लेकर एक घेरे में सजाने लगी।

अब सुधा पौने तीन साल की है। मँझली भाभी मरते समय उसे ग्यारह महीने की छोड़ गई थीं।

बेचारी सुधा को शायद ध्यान नहीं था कि वह तुलसी के पौधे की डालियाँ नहीं, अपनी ताई के बेटे के हाथ-पाँव तोड़ रही है। यदि ध्यान रहता तो वह कभी वैसा न करती, क्योंकि भाभी की आँखों का सामना कर सकना कोई साधारण न थी।

आनंद से बैठी हुई वह अपने खेल को तरतीब दे रही थी कि बड़ी भाभी की नजर उधर पड़ गई। बटी हुई दाल की पिट्ठी को छोटी भाभी के पास से लाकर

चौके में लिए जारही थीं, उसे एक ओर फेंक कर झन-झन करती हुई वे सुधा के पास जा पहुँचीं। गरजती हुई बोलीं—अभागी, यह क्या कर डाला?

मैं छोटे भइया के कुरते में बटन टाँक रही थी। उसे जैसे का तैसा वहीं छोड़ कर दौड़ी, पर मेरे जाने से पहले ही सुधा के ऊपर मोटे-मोटे कड़ोंवाले हाथ पड़ चुके थे। वह एक ओर पड़ी बिलबिला रही थी। कड़े की असयंत चोट से कनपटी के पास का भाग लाल होगया था।

मैं जाकर चुपचाप खड़ी होगई। भाभी के चंडी रूप के सामने किसकी मजाल थी जो उसे उठाता।

मुझे देखकर तो उनका क्रोध और भी उबल पड़ा। गरजती हुई बोलीं—हाँ-हाँ, सब लोग दौड़कर आजाओ। महाभारत होगया है न, पर क्या मैं किसी से डरती हूँ? मैंने मारा है और मारूंगी; ऐसी लाड़ली को मैं सिर नहीं चढ़ा सकती।

मेरे ही सामने दो-चार हाथ उस बिलखती हुई बच्ची के और जड़ दिये। मैं काठ की तरह देखती रह गई।

डालियाँ और पत्तों को बटोरकर वे तुलसी के वृक्ष के पास लेगईं। असंयत प्रलाप के साथ घोर गर्जन करती हुई वे उस दुधमुहीं बालिका के लिए मौत का वरदान माँग रही थीं।

मैंने डरते डरते सुधा को उठाया, और धीरे से कहा—देख, अब ऐसा कभी न करना।

प्यार के इन शब्दों को सुनकर सुधा और भी वेग से रो पड़ी। भाभी ने क्रोध की नजर मेरी ओर डालकर कहा—इसी तरह तो लड़कियाँ सुधरती हैं? लेकर और चुमकारो, फिर कह दो और जोर से रोये।

मैं क्या कहती। चुप थी, पर मन ही मन दुखी थी। मुझे छोटी भाभी के ऊपर गुस्सा आरहा था।

इतना कांड हो जाने पर भी वे उसी तरह बरामदे में दाल पीस रही थीं। उठकर झाँकने का भी नाम नहीं। मैंने अभागिनी सुधा को गोद से नीचे डाल दिया और जाकर काम में लग गई, लेकिन सच तो यह है कि मैं एक टाँका भी न डाल सकी।

मेरा जी उबल रहा था, बड़ी भाभी पर नहीं, छोटी भाभी पर। उनके सरल स्वभाव को अच्छी तरह कोसकर, उनकी निष्ठुरता पर दो कड़े व्यंग्य सुनाने के लिए, मैं अस्थिर हो उठी। कुरते और सुई को फिर एकबार फेंक कर बरामदे में जा पहुँची। देखती क्या हूँ कि छोटी भाभी का अंचल अंसुओं से तर है। हृदय की अपरिमित वेदना को जैसे बहा देने के लिये उन्होंने आँसुओं का बाँध तोड़ दिया है।

मैंने कहा—ऐं भाभी, तुम तो रो रही हो?

मेरी बात का जवाब गहरी सिसकियों और आँसुओं की बौछार ने दिया। क्षण भर मैं ठक थी। मेरे लिए सुधा का हत्याकांड उतना अयाचित नहीं था जितना छोटी भाभी का विलापकांड। मैं बैठ गई। उनके भीगे कंधे को हिलाकर पूछा—भाभी, भाभी, हुआ क्या?—तुम्हें मेरी कसम, बताओ हुआ क्या?

दो-चार सिसकियों के बाद उनके कंठ से निकल सका—कुछ नहीं।

मैं—कुछ नहीं, तो यह धोती का पल्लू क्यों भीग गया?

अपनी बड़ी-बड़ी, आँसुओं से तर, आँखों को मेरी ओर उठाकर वे बोली—देखो रानी, मैं यह नहीं देख सकती। फूलों के ऊपर कहीं पत्थर का प्रहार किया जाता है?

मेरा नाम तो है विनीता, पर छोटी भाभी ने जब से इस घर में कदम रक्खा है तभी से मुझे 'रानी' बना डाला है। मैंने विवश हँसी हँसकर कहा—पर क्या किया जाय?

वे—तो तुम्हारा मतलब है कुछ न किया जाय?

मैं—सो क्यों? खूब किया जाय। इसी तरह, तुम्हारी भांति बैठकर खूब रोया जाय। ढेर के ढेर आँसू बहा दिये जायँ।

वे—नहीं रानी, सो नहीं। अब मैं रो चुकी। उन्होंने आँखों के आँसू पोंछ डाले।

मैं—तो अब संग्राम करोगी ? लाऊँ तलवार ?

वे—संग्राम क्यों, उसी को तो बचाना है ?—बस, ऐसे कांड अब नहीं हो सकेंगे।

मैं—तो रोको न मैं भी देखूं।

वे—आज ही लो।

मैं—पर किस प्रकार ?

वे घर से बाहर की ओर उँगली का इशारा करके बोलीं—आज की रात से अपना डेरा वहाँ लगेगा।

वह पुराना टूटा मकान था, जो पिताजी ने कभी छोड़ दिया था। मैंने एक बार ही उस मकान पर नजर फेंककर पूछा—तो जुदी रहोगी ?

वे—बस अब और कुछ नहीं।

मैं—निश्चित ?

वे गंभीर भाव से—सुनिश्चित।

मैं—पर बेचारी सुधा का उद्धार तो नहीं हुआ ?

वे—क्यों, क्यों नहीं हुआ ? सुधा मेरे साथ रहेगी।

मैं—तुम्हारे साथ ?

वे—और नहीं तो ?—इतना कह कर वे उठीं और अपने कमरे में चली गईं। मैं काष्ठवत् बैठी रह गई। अब तक मेरे लिए बड़ी भाभी ही एक पहेली थीं। इन

छोटी भाभी को मैं मिट्टी का ढेर ही समझती थी । आज देखा उनमें कितना दर्प है, कितना वैषम्य है । उनके साथ हँसी-मजाक में सम्मिलित होकर मैं समझने लगी थी कि मैं उनको पूरी तरह जान गई हूँ ? पर वह निरा भ्रम था । मैंने तो अभी तस्वीर का एक ही पहलू देखा था, और शायद वह भी पूरी तरह नहीं । उनके इस ओजस्वी रूप को देखकर मेरे मन में श्रद्धा और भय का एक मिश्रित भाव पैदा हुआ जो देर तक बना रहा ।

थोड़ी देर में उनके सामान की एक गठरी और एक सन्दूक तैयार रक्खे थे । सुधा को वे अभयदान देकर उठा लाई थीं और वह मजे से उनकी गठरी पर चढ़ी हुई अपने घोड़े को हाँक रही थी ।

भाभी

: २ :

बड़े भैया में कुछ आदर, कुछ बड़प्पन, कुछ गंभीरता और कुछ उनका मितभाषण इन सबने मिलकर एक अत्यन्त दबदबेपूर्ण व्यक्तित्व की सृष्टि कर दी है। उन्होंने अपने जीवन में सदा खर्च ही किया, पैसा पैदा करने का योग उनकी कुंडली में ही नहीं है। उधर मझले भैया बिलकुल उल्टे हैं। उन्होंने स्कूल छोड़ने के समय से ही घर के खर्च का सारा भार अपने ऊपर ले लिया है और बड़ी आसानी से अबतक उसे चलाये जाते हैं। इतना होने पर भी बड़े भैया के सामने वे आँख उठाकर बातचीत नहीं कर सकते। छोटे भैया की तो बिसात ही क्या ? वे तो अब तक लड़के ही हैं। क्या हुआ कल से दस रुपये के नौकर होगये। बड़े भैया के सामने पहुँचते ही

उनकी जीभ तालू में लग जाती है। बड़े भैया सचमुच ही बड़े भाग्यशाली हैं जिन्हें ऐसे आज्ञाकारी और अनुचर भाई मिले हैं। कभी कभी मौज में आकर वे कह भी देते हैं—जब तक दो-दो बछेड़े मौजूद हैं, मुझे क्या परवाह है ?

अभी उस दिन आप चूल्हे के सामने बैठे भोजन करते-करते कह उठे थे—मुझे एक ही दुख है।

उस समय बड़ी भाभी जो रायता परोस रही थीं और मैं जो रोटी बना रही थी, दोनों ही उनके मुंह से अगली बात सुनने को उत्कंठित हो उठीं। तब आप बोले थे—यही कि पिताजी दुख तो मेरे हिस्से का भी भोग गये और सुख अपने हिस्से का भी मेरे लिए रख गये।

उनकी इस बात पर मैं तो ठहाका मार कर हँस पड़ी; पर भाभी ने कुछ बुरा-सा माना था। वे उसी समय बोल उठीं—तो कुछ मेहनत-मजूरी क्यों नहीं करते ? पड़े-पड़े खाने को आनन्द समझते हो; पर यह नहीं जानते कि पराधीनता का खाना भी कोई खाना है। दूसरे की कृपा का मोहनभोग भी मुझे तो कभी नहीं रुचा, पर क्या करूं सब कुछ सहना ही पड़ता है। तुम इसे भले ही सुखभोग नाम दो।

इस प्रकार अप्रिय रूप प्राप्त होजाने पर उन्होंने अपने स्वाभाविक बड़प्पन से केवल मौन रहकर उस संवाद को

समाप्त कर दिया था। उनकी मौन ही थी जिससे बड़ी भाभी तक भय खाती थी; नहीं तो और सारे घर में वे किसी को क्या गिनती ? स्वयं बड़े भैया से विवाद के समय सामना करने में उन्हें संकोच न होता था।

आज जाने क्यों दुनियाँ पलट गई। आज उन्हीं बड़े भैया के सामने छोटे भैया देवधर निस्संकोच-भाव से आ खड़े हुए।

मैं भैया के लिए पान लगा रही थी। वे मेरे पास ही बैठे हुक्के की नली को मुंह में दिये थे। कभी-कभी एक-दो फूंक ले लेते थे।

छोटे भैया सामने आ खड़े हुए, पर बड़े भैया ने इधर ध्यान ही नहीं दिया। जरूरत भी क्या थी ? छोटे भाई का आकर खड़ा होना कुछ विलक्षण थोड़े ही होता है। वे उसी तरह रहे। एक बार मुझसे जरूर पूछा—बिनू, आज सुधा किधर है ?

मैं न बोली। पान लगाने में जैसे सुन ही न पाया हो। इतनी देर बाद छोटे भैया आप ही बोले—दादा !

बड़े भैया—क्यों देवधर, क्या बात है ?

देवधर— चाबी चाहता हूँ। उस पुराने मकान की चाबी।

बड़े भैया—क्यों ?

देवधर—उसमें रहूँगा।

बड़े भैया—बहू के साथ ?

छोटे भैया—चुप ।

बड़े भैया—चुप क्यों होगया ? मैं क्या पूछता हूँ ?

देवधर—वही कहती है ।

बड़े भैया—ठीक तो है, चाबी जाकर ले लो न ।

छोटे भैया चले गये मैंने मन ही मन कहा—नारी, तू धन्य है ! तू ही वीर को कायर और कायर को सिंह बना सकती है ।

पान लगा कर मैंने भैया को दिया, पर उन्होंने लिया नहीं, वे बोले—खा लेंगे । रख ले विनू ।

वे कुछ विचारमग्न से होगये ।

कुछ देर बाद जब मैं दालान से निकल कर गई, तो रसोईघर में बड़ी भाभी कुछ कर रही थीं । अँधेरा-सा हो चला था । चौके में कुछ ज्यादा अँधेरा मालूम पड़ता था, पर वे चुपचाप अपने काम में लगी थीं । आज दिया-बत्ती वाली उस लौंडी ने अब तक खबर ही न ली थी, फिर भी सब शान्त था । वातावरण स्वयं कारण को शायद समझ रहा था ।

देखा, छोटी भाभी आईं । रसोईघर में जाकर जिठानी के चरणों की रज माथे में लगा लाईं, पर जीजी के मुंह में इस समय जबान नहीं थी जो कुछ आशीर्वाद तक देतीं ।

वाहर आकर उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और द्वार की ओर ले चलीं। वाहर छोटे भैया और सुधा खड़े थे। भाभी ने मुझसे कहा—घर से जा रही हूँ सही पर मन से नहीं। किसी न किसी के मन में तो रहूँगी ही क्यों रानी, वोलती क्यों नहीं ? तुम मुझे भूल सकोगी ?

मेरे मुंह से उत्तर न निकला। मैं रो पड़ी।

छोटी भाभी—रोती हो छिः।

मैंने हिलकी को रोककर कहा – भाभी, तुम पत्थर हो।

वे—ठीक कहा। मेरा नाम भी तो अहिल्या है—अव मुझे विदा दो रानी। सुधा को जाकर सुलाऊँ।

मैं किवाड़ से चिपट कर रोने लगी।—छोटी भाभी चली गई ! भैया देवधर चलेगये ! नन्ही-मुन्नी सुधा चली गई !—पर ऐ मूर्ख मन वे गये कहाँ ! उस सामनेवाले मकान में ही तो हैं।

थोड़ी देर में आँसू नहीं रहे। किवाड़ के पास खड़े-खड़े थक गई, तव जाकर भीतर वैठ गई। वेचारी वड़ी भाभी चुपचाप काम में लगी थीं। समय का एक-एक पल जिनकी गर्जना से गूंजा करता था, वे उतनी दारुण नीरवता में सांसें कैसे ले रही थीं ! उन्होंने छोटी भाभी की प्रतिज्ञा नहीं सुनी थी। उन्होंने वड़े भैया के सामने देवधर को खड़े नहीं देखा था, कौन कहाँ जा रहा है यह उन्हें

मालूम न था। उन्हें केवल मालूम था यही कि उनकी देवरानी ने दीपक जलाने के बाद आकर उनके चरणों में प्रणाम किया था। साधारण शिष्टाचार की दो बातें की थीं। यह तो उसे करना ही चाहिए था; पर फिर भी उन्हें पूरा आभास मिल गया था।

मैं अपने खिन्न मन को लिए चुपचाप बैठी थी। एक बार क्रोशिया को लेकर कुछ बुनना चाहा पर जी कहाँ लग सका। रामायण के भी दो-चार पन्ने उलटे—पर उसे भी पढ़ न सकी। एक तीव्र मनोव्यथा मेरे रोम-रोम में समा गई थी। इतना भी बल नहीं था कि बड़े भैया के लिए लगाया हुआ पान जाकर उन्हें देती।

मँझले भैया आज अब लौटे। शायद कहीं किसी मिलनेवाले के यहाँ ठहर गये होंगे। वे आते ही बोले—क्या आज मुझे इतनी देर हो गई है जो सब लोग सोने चले गये?

उनकी बात समाप्त होने से पहले ही मैं तो सजग-सचेत होकर बैठ गई। बड़े भैया अँधेरे में चुपचाप बैठे थे। वहीं से बोले—श्रीधर!

मँझले भैया 'हाँ दादा'—कहकर उनके पास चले गये। बड़े भैया ने कहा—देख श्रीधर, मैं तो कुछ पैदा करता नहीं हूँ।

श्रीधर—उसकी आपको जरूरत ही क्या है?

यह मैं जानता हूँ। इसीलिए तो निश्चिंत हूँ, पर क्या सदा निश्चिंत रह सकूँगा भाई?

मँझले भैया अब तक कुछ न समझे थे। यह उनके रँग-ढँग से प्रतीत हो था। वे बोले—आज, यह सब आप क्यों सोच रहे हैं?

बड़े भैया—सोच रहा हूँ। मनुष्य को, और एक गृहस्थ को इन सब बातों पर सोचना चाहिये।

श्रीधर सोचना तो चाहिए; पर आपके लिए तो सोचने को और बहुत से काम हैं।

बड़े भैया—वही तो, अब वे बहुत से काम मुझसे न होंगे। मैंने जीवन भर बैठे-बैठे सोचा है। सोचने के सिवा मैंने और क्या किया है? तुम्हारी भाभी को मालूम है कि मैं सोचते-सोचते ही अकर्मण्य बन गया हूँ। पर यह अच्छा है कि तुम ठीक काम पर लगे हो। विनीता भी अपने घर की होगई है। देवधर भी रास्ते पर आगया है।

श्रीधर—भैया, पर यह सब हुआ क्या अपने आप! यह सब आप ही के पुण्य प्रताप से तो हुआ।

मेरे पुण्य-प्रताप से? मेरे पुण्य प्रताप से? हुआ तो सचमुच पुण्य-प्रताप से ही पर मेरे नहीं पुरखों के मुझे तो सिर्फ इतना ही श्रेय है कि मैं नाटक के इस दृश्य का परदा खींचता रहा हूँ।

उसी समय बड़ी भाभी ने द्वार के पास आकर कहा—भोजन ठंडा हुआ जाता है।

बड़े भइया—हाँ, भाई चलो। खा तो लें। मैंने भी तो अभी नहीं खाया है।

मझले भइया हाथ-मुंह धोने चले गये। बड़े भइया घर से बाहर निकल गये। थोड़ी देर में छोटे भइया को साथ लेकर आगये और तीनों भाई खाने बैठे।

मैं देखती थी कि छोटी भाभी भी आती हैं या नहीं पर वे न आईं। सुधा थककर सो गई होगी। उसे अकेली छोड़ कर वे आतीं भी कैसे ?

उस रात को न बड़ी भाभी ने कुछ खाया, न मैंने। हम दोनों अपने-अपने कमरों में देर तक जागते-जागते सो गईं।

: ३ :

सवेरा हुआ। धूप छत से उतर कर आँगन में फैल गई। मँझले भैया दतून करते-करते बोले—क्या बात है, आज सुधा अब तक पड़ी सोती है ?

मेरी भी गन्दी आदत है। हर बात में अपने को उत्तरदायी समझ बैठती हूँ। जैसे हर बात मुझी से पूछी जाती हो। ब्याह से पहले जो संबंध इस घर से था। वही तो अब नहीं हो सकता। दो-चार दिन की मेहमान होकर मैं क्यों अपने आपको इस प्रकार उलझाये हुए हूँ; यह मैं नहीं समझ पाती हूँ।

भैया श्रीधर को संध्या समय के महान कांड का कुछ भी ज्ञान नहीं है; पर किस प्रकार उन्हें बताऊं ? जीभ तालू में अटक रही है। भैया ने न तो मुझे लक्ष्य

करके पूछा ही था और न मेरा पद ही घर के खुफिया-विभाग का था। इसलिए उनके प्रश्न का सारा कर्तव्य बड़ी भाभी पर ही जा पड़ा, जो स्नान-वंदन करके तुलसी-पूजा की तैयारी कर रही थीं।

किन्तु हम दोनों को धर्म-संकट से छुड़ाते हुए सुधा ने द्वार से भीतर प्रवेश किया। भैया श्रीधर ने कहा—सुधा तो इधर से आरही है। कहाँ थी सुधा?

सुधा ने मुंह घुमा कर उँगली दिखाते हुए कहा—वहाँ। उस घर में। मैं अपनी चाची के पास सोती हूँ।

भाभी तुलसीचौरे के पास पहुँच गई थीं। उनके हाथ की गंगाजली छूट कर आवाज के साथ पृथ्वी पर गिर गई। सुधा भी उधर देखने लगी। भैया श्रीधर भी उधर ही देखने लगे।

थोड़ी देर में काम पर जाने से पहले जब वे नहा-धोकर खाने बैठे तो भाभी और देवर में सारी चर्चा होगई। भाभी ने सब कुछ बता दिया। मँझले भैया भोजन के साथ उसे भी उदरस्थ कर गये। जैसे कुछ घटना हुई ही न हो, इस प्रकार का धीर-गंभीर और उदासीन भाव दिखाकर केवल बीच बीच में 'हाँ'-'हूँ' करते हुए सब कुछ सुनते भी रहे और खाते भी गये।

अन्त में केवल इतना ही कहा—छोटी बहू ने अच्छा नहीं किया। बच्चों को यदि मनचाही शैतानी करने के

भाभी—मैं ठीक समझती हूँ । तुम लोग भले ही उसे लड़कपन कहो, पर वह बड़ी चतुर है । सारी दुनियाँ हम लोगों को थूकेगी कि बाप के मरते ही छोटे भाई को निकाल दिया । मैं अपने एकलौते की सौगन्ध खा कर कहती हूँ कि मैं भी किसी के कहने की परवाह नहीं करती । मेरे मन में जब कोई बुराई नहीं है तो मैं क्यों डरूं ?

मझले भैया—यह ठीक कहती हो भाभी ? पर मेरी समझ से छोटी बहू का भाव यह नहीं रहा होगा ।

भाभी—हो सकता है । चौबीस घंटे साथ-साथ रह कर भी मैं उसे न समझ सकी होऊँ । पर मेरा विचार यही है कि वह वैसी दूध की धुली नहीं है ।

मझले भैया कपड़े पहनते हुए—शायद ।

भाभी देख लेना ।

मझले भैया चले गये । उनसे भाभी को कोई उत्तर न मिला । भाभी गोली–बारूद भरे फिरती रहीं । कोई ऐसा नहीं मिल रहा था जो अपने को सम्मुख कर देता और वे उसके ऊपर जी भर कर उसे बरसा देतीं । मैं अपने स्थान पर बैठी थी । रामू का सूटर बुन रही थी । वह कहीं बाहर से खेल खालकर आगया और मुझसे उलझ रहा था ।

रामू—बुआ, तुम अब तो यहीं रहोगी ?

मैं–तू मुझे तंग करता है । काम नहीं करने देता । मैं

लिए छोड़ दिया जायगा तो वे फिर किसी को क्यों गिनेंगे ?

भाभी—यही तो है न। वैसे क्या मैं सुधा और रामू में दुभाँति करती हूँ। यदि मैं झूठ कहती होऊं तो मेरी जीभ कट कर गिर पड़े। मैं तो सुधा को अपनी पेट-जाई संतान ही समझती हूँ। और क्यों न समझूं, जब भगवान ने उसे मेरी ही गोद में सौंप दिया है।

भाभी ने आँखों में आँसू भर लिये। मँझले भैया ने कहा—छोटी बहू यों तो समझदार है, पर अभी लड़कपन जो है।

बड़ी भाभी बोलीं—इसे समझदारी कौन कहेगा भैया ? थोड़ी देर ठहर कर कहा—सच बात तो यह है कि उन्हें बहाना चाहिए था। वे तो अलग होने में ही अपना हित देख रही थीं। पति नौकर हो गया है। उसकी कमाई जेठ-जिठानी न खा जायँ, इसकी चिन्ता होनी स्वाभाविक थी। कोई बात न मिली तो सुधा को उपलक्ष्य बना लिया। सुधा को साथ ले लेने में भी उन्होंने दूरदर्शिता ही की है। सुधा के कारण सुधा के बाप को भी अलग किया जा सकेगा। रहे हम तीनों प्राणी; जो तुम्हीं सब के दिये हुए टुकड़ों पर जीते हैं। हमारी ही खराबी है।

भैया बोले · नहीं भाभी, छोटी बहू को तुम ऐसा न समझो

लिए छोड़ दिया जायगा तो वे फिर किसी को क्यों गिनेंगे ?

भाभी—यही तो है न। वैसे क्या मैं सुधा और रामू में दुभाँति करती हूँ। यदि मैं झूठ कहती होऊं तो मेरी जीभ कट कर गिर पड़े। मैं तो सुधा को अपनी पेट-जाई संतान ही समझती हूँ। और क्यों न समझूं, जब भगवान ने उसे मेरी ही गोद में सौंप दिया है।

भाभी ने आँखों में आँसू भर लिये। मँझले भैया ने कहा—छोटी वहू यों तो समझदार है, पर अभी लड़कपन जो है।

वड़ी भाभी वोलीं—इसे समझदारी कौन कहेगा भैया ? थोड़ी देर ठहर कर कहा—सच वात तो यह है कि उन्हें वहाना चाहिए था। वे तो अलग होने में ही अपना हित देख रही थीं। पति नौकर हो गया है। उसकी कमाई जेठ-जिठानी न खा जायँ, इसकी चिन्ता होनी स्वाभाविक थी। कोई वात न मिली तो सुधा को उपलक्ष्य बना लिया। सुधा को साथ ले लेने में भी उन्होंने दूरदर्शिता ही की है। सुधा के कारण सुधा के वाप को भी अलग किया जा सकेगा। रहे हम तीनों प्राणी; जो तुम्हीं सब के दिये हुए टुकड़ों पर जीते हैं। हमारी ही खरावी है।

भैया वोले - नहीं भाभी, छोटी वहू को तुम ऐसा न समझो

भाभी—मैं ठीक समझती हूँ। तुम लोग भले ही उसे लड़कपन कहो, पर वह बड़ी चतुर है। सारी दुनियाँ हम लोगों को थूकेगी कि बाप के मरते ही छोटे भाई को निकाल दिया। मैं अपने एकलौते की सौगन्ध खा कर कहती हूँ कि मैं भी किसी के कहने की परवाह नहीं करती। मेरे मन में जब कोई बुराई नहीं है तो मैं क्यों डरूं ?

मझले भैया—यह ठीक कहती हो भाभी ? पर मेरी समझ से छोटी बहू का भाव यह नहीं रहा होगा।

भाभी—हो सकता है। चौबीस घंटे साथ-साथ रह कर भी मैं उसे न समझ सकी होऊँ। पर मेरा विचार यही है कि वह वैसी दूध की धुली नहीं है।

मझले भैया कपड़े पहनते हुए—शायद।

भाभी देख लेना।

मझले भैया चले गये। उनसे भाभी को कोई उत्तर न मिला। भाभी गोली-बारूद भरे फिरती रहीं। कोई ऐसा नहीं मिल रहा था जो अपने को सम्मुख कर देता और वे उसके ऊपर जी भर कर उसे बरसा देतीं। मैं अपने स्थान पर बैठी थी। रामू का सूटर बुन रही थी। वह कहीं बाहर से खेल खालकर आगया और मुझसे उलझ रहा था।

रामू—बुआ, तुम अब तो यहीं रहोगी ?

मैं—तू मुझे तंग करता है। काम नहीं करने देता। मैं

नहीं रहूँगी ।

रामू—बुआ, मैं तुम्हें जाने न दूंगा ।

मैं—क्यों ?

रामू—तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो । देखो, तुम्हीं तो मुझे कहानी सुनाती हो । जब फूफाजी आयेंगे तो मैं तुम्हें छिपा दूंगा । जानती हो कहाँ ? चाची के घर में ।

मैंने उसके गाल पर एक हलकी-सी चपत जमा कर कहा—धत् पाजी कहीं का ।

रामू-अच्छा तो क्या करूं ?

मैं—तू तो मर्द है । मर्दों की तरह कह देना कि हम अपनी बुआ को नहीं भेजते ।

रामू—तब ?

मैं—मैं क्या जानूं ।

रामू—तब फूफाजी नाराज हो जायेंगे ।

मैं—हो जाने देना ।

रामू—पर यह तो बुरा होगा । वे तो मुझे खूब मिठाई देते हैं ।

मैं—तो मिठाई लेलेना ।

रामू—मिठाई ले-लेने से वे तुम्हें जो ले जायँगे ।

मैं—हाँ सो तो ले ही जायँगे ।

रामू—पर बुआ जी, क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि मैं फूफाजी से कह दूं—

मैं—क्या कह दे ?

रामू - यही कि मेरा सूटर बुनने तक वे तुमको न ले जायँ ?

मैं—हाँ यह ठीक है ।

रामू—पर यह कब तक बुन जायगा ?

मैं—दो तीन दिन में बुन जायगा ।

रामू—नहीं, इतनी जल्दी न बुनना ।

मैं–तो तेरे पास दूसरा सूटर जो नहीं है ।

रामू - न सही ।

मैं–तो नंगा रहेगा ? सब जगह बदनामी करायेगा ? सब लोग हमारी हँसी करेंगे । कहेंगे इनका भतीजा नंगा रहता है । उसके पास जाड़ों में पहनने लायक एक सूटर भी नहीं है ।

रामू -अच्छा तो बुआ तुम जल्दी बुन दो । फूफा जी के आने से पहले ही बुन दो ।

मैं - ठीक है ।

बरामदे में भाभी के पैरों की पैंछल सुनाई दी । वे बड़े भैया के कमरे की ओर जा रही थीं । आज अब तक बड़े भैया ने बिस्तर न छोड़ा था। चुपचाप अपने कमरे में ही पड़े थे ।

मालूम पड़ता था, कल की घटना ने उनके मानसिक जगत को ही अन्दोलित न किया था वरन् स्वास्थ्य पर

भी प्रभाव डाला था। एक बार मैं रामू का कुर्ता लेने गई थी तो कमर के दर्द के कारण उनके कराहने की आवाज सुन आई थी।

भाभी जान बूझ कर पैरों की आवाज करते हुए गई थीं पर भैया ने शायद सिर न उठाया, तब वे चौखट का सहारा लेकर खड़ी हो गईं और बोलीं आज कोपभवन में कब तक रहा जायगा ?

भैया ने करवट बदलकर और सिर उठाकर कहा देवी, क्षमा करो। जरा शरीर स्वस्थ हो लेने दो।

भाभी—मैं भी तो सुनूं इतने सोच का कारण क्या है ? जिसे लिहाज रखना चाहिए जब वही अलग जा खड़ा हुआ। अपनी स्त्री के सामने बड़े भाई के बड़प्पन का भी ख्याल न किया। एक बार भी न पूछा कि आपकी क्या राय है, तो आप ही क्यों अधीर हो रहे हैं ? फिर भाई-भाई क्या सदा साथ ही रहते हैं ?

बड़े भैया ने दृढ़ स्वर से कहा—मैंने तो तुम्हारे काम में विरोध नहीं किया। जो हुआ सो अच्छा ही हुआ।

भाभी को पैर जमाने के लिए आधार मिलना चाहिए फिर तो वे पीछे रहने वाली नहीं। वे प्रतिरोध पाकर अपने मन के उफान को निकालने के लिए पैंतरे बदलते हुए बोलीं—तो मैंने ही यह सब किया ? यही तुम कहते हो ?

भैया ने उसी तरह संक्षिप्त उत्तर दिया—अपने मन से पूछो। मुझसे क्या पूछती हो ?

स्वामी के द्वारा इस प्रकार दोषारोपित की जाने से उनका हृदय विदलित हो उठा। उनके रोम-रोम से बेतहाशा सिसकी फूट पड़ीं। वे रोती हुई बोलीं—मैं ही सब अनर्थों की जड़ हूँ। सब लोग मिलकर मुझे संखिया क्यों नहीं दे देते। घर पाक हो जाये। सब लोग सुख की नींद सोयें।

इसके बाद भैया कुछ न बोले। थोड़ी देर बाद उन्हें उसी तरह सिसकता छोड़ कर वे उठे और अपने काम-काज में लग गये।

उस दिन दस के बजाय उन्होंने एक बजे दिन के भोजन किया। भाभी अपने स्थान से न उठीं। मैंने ही जाकर खाना परोसा और तब तक बैठी रही जब तक उन्होंने अच्छी तरह खा न लिया।

उस दिन का खाना क्या था। जो कुछ भाया, दो-चार-दस कौर खाकर भैया उठने लगे तो मैंने कहा अभी आपने खाया कहाँ ?

भैया ने कहा—बस।—और वे उठ गये।

अब मेरे सामने प्रश्न आया कि क्या करूं ? आखिर जाकर भाभी को मनाने लगी। पर उन्हें तो आज भूख ही न थी। भैया ने बारबार मुझे अनुरोध करते सुन

लिया तो कड़क कर बोले—बिनू, खुशामद क्यों करती है? जिसको भूख लगेगी आप खायगा। जा तू भोजन करले।

उस दिन मुझे और भाभी दोनों ही को निराहार रहना पड़ा।

[४]

कुछ दिन पहिले छोटे भैया देवधर की भाँति और कौन निरीह था। बड़े भैया का शासन, मझले भैया का शासन और उस पर भाभियों की हुकूमत। सबको सहन करते हुए बड़े मजे से स्कूल के अध्यापकों की फरमाबरदारी का सर्टीफिकेट भी उन्होंने पा लिया था। उन्हें देखकर मालूम पड़ता था कि उनका जीवन गुलामी करने के लिये ही बनाया गया था, या यों कहें कि विनयशीलता का गुण उनमें सबसे प्रमुख था पर इधर के उनके आचरण को देखकर तो मैं उन्हें अपना वह छोटा भैया मानने को तैयार न थी। उनमें इतने साहस और इतनी दृढ़ता की मैं तो कल्पना भी न कर सकती थी। मेरा तो अब भी विचार है कि छोटी भाभी की दृढ़ता उन्हें दृढ़ बनाये हुए थी।

५

जिस दिन से वे घर से निकले थे, उसी दिन से उस छोटे से मकान में एक परिणत वयस अनुभवी गृहस्थ की भाँति रहते थे। संध्या समय उन्होंने घर छोड़ा था। बड़े भैया के अनुरोध से केवल उसी दिन घर आकर भोजन किया था, पर प्रातःकाल से ही सब कुछ जुटा लिया। जैसे इस दिन के लिए वे पहले से ही पूरी तरह तैयार हों।

छोटी भाभी में भी उसी दिन से न जाने कहाँ से सद्बुद्धि आगई थी। जिसे देखो वही आकर उनके प्रबंध और परिश्रम की प्रशंसा करने लगता। सरन नाइन ने आकर कहा—छोटी बहू के घर से आ रही हूँ।

बड़ी भाभी ने उत्सुक होकर पूछा—देख आई। कैसे रहती हैं?

सरन ने उत्तर दिया—और तो चाहे जैसी हों पर छोटी बहू परिश्रम खूब करती हैं। घर तो चार ही दिन में ऐसा कर लिया कि थोड़ी देर बैठने को जी चाहता है।

यह सुनकर भाभी को कैसा लगा यह तो नहीं कहा जा सकता पर वे कुछ अप्रतिभ अवश्य होगई, पर तुरन्त ही बोलीं—अब अपना घर है। करेंगी नहीं तो कौन करने आयगा। यहाँ भी तो रहती थीं। क्या तब भी इसी तरह काम करती थीं, तुम्हीं बताओ सरन!

सरन बेचारी क्या कहे। उसने सिर हिला दिया, पर

भाभी यों कब छोड़ने वाली थीं, बोलीं—तुम तो देखती थीं। बिना कलह के घर में कौर नसीब होता था ?

आखिर सरन को कहना पड़ा—ठीक कहती हो बहूजी। अपना घर अपना ही घर है।

भाभी—मेरा जीवन तो इस घर में यों ही गया। न कभी अच्छा खा पाई, न अच्छा पहन पाई। दिन-रात गृहस्थी के जंजाल में पिसते ही बीता है। जब से ब्याह कर आई हूँ तब से न कभी सास का सुख देखा, न देवरानियों का। मेरी ओर देखकर बोलीं—ननद बेचारी का तो देखती ही क्या ? वह जब कुछ करने लायक हुई तो पराये घर की होगई।

सरन हँसकर कहने लगी—बहूजी, यह तो मैं कैसे मानूं ? आपही तो इतने बड़े घर की मालकिन हैं। आपकी बात किसने कब डाली है ? इतने इतने बड़े देवर आपके आज्ञाकारी हैं। आज अलग हो गये तो क्या ? मुंह तो आपका ही देखते हैं।

भाभी बोलीं—नहीं सरन, यह सब कहने की बातें हैं। किया-कराया कौन मानता है ? लाज बड़ों को ही खाती है। छोटों को इतना ख्याल कहाँ है ?

सरन—मैं कैसे मानू बहूजी। दो तीन दिन से बराबर देख रही हूँ। छोटे बाबू का मुंह सूख कर कुम्हला गया है। सब काम करते हुए भी छोटी-बहू की हर वक्त भीगी रहती हैं।

वे अलग रह कर क्या सुखी हैं ? क्या वे अलग रह सकेंगे ?

भाभी—सब रह सकेंगे। न रह सकते तो क्यों जाते ? उन्हें निकाला किसने था ? अपने आप चलाकर ही तो गये हैं !

इस समय तक रामू का उपद्रव असह्य होगया था। वह माँ से खाने की कोई चीज माँगते माँगते थक कर स्वयं लकड़ी लेकर भीतर पहुँचा था और उसी के सहारे ऊपर रक्खे हुए कटोरदान को गिरा दिया था। कटोरदान के गिरने से नीचे रक्खी बोतलें चूर चूर होगई थीं। इसीलिये भाभी शीघ्रता से उधर चली गई। वैसे शायद मुझे ही भेज देतीं, पर इधर दो चार दिन से मुझसे वे बहुत थोड़ा बोलती थीं।

उनके चले जाने पर मैंने धीरे से सरन से पूछा—छोटी भाभी, मेरी भी याद करती हैं ?

क्यों न करेंगी ! तुम तो उनकी जबान पर ही रक्खी रहती हो। तो भी आश्चर्य है तुम चार दिन में एकबार भी उन्हें देखने न गई।—कहकर वह मेरे मुंह की ओर देखने लगी, फिर बोली—बड़ी बहू जब तक आरही हैं तब तक आओ तुम्हारी चोटी गूंथ दूं।

कंघी और तेल की शीशी वह जाकर स्वयं उठा लाई और बिना कुछ कहे मेरे केश गूंथने लगी। तब मैंने

चलाकर कहा—मेरी तो इच्छा है थोड़ा छोटी भाभी को जाकर देख आऊँ।

एक हाथ से केशों को थाम कर और दूसरे से कंघी लगाकर वह बोल उठी—तो बाधा क्या है ? कहीं दूर तो है नहीं। अन्नपूर्णा का मन्दिर तो दूर है, पर वह मकान तो यह रहा।

मैं—सो तो जानती हूँ।

सरन—तो क्या बहूजी कुछ कहेंगी ? न कभी न कहेंगी। और तुम्हारे लिए छोटी और बड़ी दोनों भाभी एक-सी हैं।—कहो तो मैं साथ चलूं ?

मैं—अच्छी बात है, जरा भाभी से कह दूं, फिर चलूंगी।

सरन के हाथ और कंघी दोनों मेरे केशों में उलझ रहे थे। वह उन्हीं के सुलझाने में लगी रही, बोली नहीं मेरे भी मन में एकाएक एक घटना याद आगई। सामने वाले आले में चीनी का एक फूटा मर्तबान रक्खा है। उस पर अकस्मात मेरी दृष्टि जा पड़ी और उससे संबद्ध समस्त बात याद आगई। छः-सात महीने पहले छोटी-भाभी के गाँव से कोई आदमी आया था। उसी के हाथों उनके मायके वालों ने थोड़ी सी मिठाई और कुछ अमरूद भेज दिये थे। बड़ी भाभी बरामदे में बैठी रामू के कपड़े रख रही थीं। बड़े भैया, क्योंकि वे ही

प्रायः घर पर रहते हैं, जब हँसते हुए उन्हें उठाकर भीतर लाये और बड़ी भाभी को यह कहकर देने लगे, लो रक्खो।

भाभी—है क्या ?

भैया—है क्या मिठाई और फल हैं।—ससुराल से आये हैं।

बड़ी भाभी ने समझा शायद उनके मायके की सौगात है। झटपट बोलीं—इधर ले आओ। भैया राधाचरण के लड़के का मुंडन हुआ होगा।

बड़े भैया ने भी मानों उन्हें चिढ़ाने के लिए ही यह नाटक किया था। वे हँसकर बोले —मुंडन तो होगया है परन्तु यह तुम्हारे मायके से नहीं आया है। यह तो देवधर की ससुराल से एक आदमी लाया है।

भाभी का मुंह छोटा-सा होगया, परन्तु उसको छिपाते हुए कहने लगीं—देवधर की ससुराल से ? क्यों क्या किसी का ब्याह है ?

बड़े भैया—सो कुछ नहीं। यों ही भेज दिया है। गरीब आदमी ही इस तरह देना-लेना जानते हैं। जिनके पास कमी नहीं है वे ही देने-लेने में संकोच करते हैं।

भाभी—इसका मतलब ?

भैया—इसका मतलब यही कि राधाचरण के लड़के का मुंडन भी होजाय और तुम्हें पूछा तक न जाय।

भाभी—चलो रहने भी दो, मैं क्या भूखी हूँ।—और इस तरह लाकर जो दिखा रहे हो सो क्या मोहनभोग भेज दिया है। लाओ, देखूं तो।

यह कहकर उन्होंने खोलकर देखा। फिर क्रोध से फुफकार कर बोलीं—इसी पर इतने फूल रहे थे। ये सड़े-गले अमरूद! हमारे यहाँ इन्हें पूछता कौन है? और यह बरसों की पड़ी मिठाई। जानवर भी जिसे न छुएँ। लेजाओ, जिसके लिए आई हो उसी को दो।

उन्होंने मिठाई और असरूदों की पोटली बड़े जोर से आँगन में फेंक दी। पोटली के धक्के से खड़ी की हुई चारपाई के हिल जाने से बरतनों की टोकरी उलट पड़ी और झनझना कर बड़े वेग से बरतन गिर पड़े।

मैं छोटी-भाभी के कहने-से मर्तवान उठाकर ऊपर रख रही थी। वह मेरे हाथ से छूट गया और दूसरे मर्तवान से टकरा गया।

बड़ी भाभी उधर कुपित हो रही थीं परन्तु उनके कान शायद हम लोगों की ओर ही थे। आवाज सुनते ही वे चिल्ला पड़ीं—यह क्या फोड़ डाला?— सब सत्यानाशी इक्ट्ठे हुए हैं। एक भी काम करने को दे दिया जाय, बस फिर क्या। इस पर इतने मिजाज कि पैर जमीन पर नहीं रखना चाहतीं। मानों अपने घर तो पलना ही झूलती हों।

मैं चुप रही। छोटी भाभी भी चुप ही रहीं। बड़ी भाभी ने उनकी सात पीढ़ियों को स्वर्ग से बुलाकर खरी-खोटी सुना डाली। आज की सड़ी-गली मिठाई और अमरूदों का भी जिक्र कर दिया। छोटी भाभी के आगमन से अब-तक जितने भी नुकसान हुए थे सब उनके मत्थे मढ़कर उन्हें क्या-क्या नहीं कह डाला, पर छोटी भाभी चुपचाप सुनती रहीं। बल्कि पीछे से आकर मेरा मुंह बन्द कर लिया कि मैं कुछ कह न सकूं।

आखिर मैंने पूछा—तुमने ऐसा क्यों किया ?

वे हँसती हुई बोलीं—ये तो उनके मुंह के फूल हैं। उनसे तुम्हें वंचित करके मैंने तो अपना स्वार्थ-साधन ही किया है रानी ! जीजी मेरे जीवन में सदा वसन्त की सुगन्ध बसाये रहती हैं, नहीं तो मैं कब की हताश हो गई होती।

मैंने उसी तरह हँसी में कहा—इस सुगन्ध से तुम्हीं अपने अंचल को सुरभित करो भाभी। तुमने मुझेउससे वंचित करके मेरा जो नुकसान किया है उसके। लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देती हूँ।

वह टूटा हुआ चीनी मिट्टी का मर्तबान आज भी उस दिन की घटना की कहानी मौन शब्दों में कह रहा है। यह सब याद करके मेरी आँखों में आँसू के दो बूंद छल-छला आये। उन्हें मैंने अपनी साड़ी के अंचल से पोंछ डाला !

मालूम पड़ता है रामू के कान खेंचे गये थे। इसलिये माँ-बेटे साथ-साथ लौटे तो माँ छोड़ती न थी और बेटा छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। अन्त में हार कर रामू ने कहा—मुझे छोड़ दे।

क्यों ?—माँ ने पूछा।

मैं तेरे घर न रहूँगा। तू मुझे मारती है।—रामू ने कहा।

माँ—कहाँ जायगा ?

रामू—चाची के घर में जाकर रहूँगा। चाची मुझे प्यार करती है।

माँ ने बेटे का हाथ झटक दिया, और कहा—जा-जा निकल यहाँ से। जा चाची के घर। अब आया तो घर में न घुसने दूंगी।

भाभी ज्यों ही मारने को बढ़ी कि रामू भाग कर मेरी गोद में छिप गया और सिसक-सिसक कर रोने लगा। मैंने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहा—इतना रोता काहे को है ? अब कोई न मारेगा।

भाभी ने डाँटते हुए कहा—चल, इधर चल। अभी से इतनी मुहँजोरी !

रामू मेरी गोद में अपने को छिपाते हुए चिल्लाया—बुआजी!

मैं—तू तो राजा बेटा है न ? राजा बेटा कहीं माँ को इतना गुस्सा दिलाते हैं। माँ की बात माननी चाहिए।

रामू—नहीं मैं तो चाची के पास रहूँगा। बुआजी तुम मुझे पहुँचा दोगी ?—माँ ने चाची और सुधा को निकाल दिया है न ?

सरन ने शायद पहली ही बात पर ध्यान दे पाया था। इसलिए वह बोली—बाबू, तुम मेरे साथ चलना। मैं तुम्हें चाची के पास पहुँचा दूंगी।—बोलो, चलोगे ?

रामू—हाँ।

सरन—ठीक है। मेरे साथ चलना।

मैं—पर चाची तो ऐसे लड़के को घर में घुसने न देंगी। जानता है, जो लड़का अपनी माँ से लड़ता है उसको चाची कभी अपने पास नहीं रखतीं।

रामू—मैं तो नहीं लड़ता हूँ। माँ ही मुझे मारती है। क्या मैंने जानकर बोतलें फोड़दीं ? सच बुआजी, मैंने तो जानकर नहीं फोड़ीं !

मैं—परन्तु लड़कों को गुस्सा भी तो नहीं करना चाहिए।

सरन मेरा जूड़ा बाँध चुकी थी, बोली अब मैं बड़ी बहू का सिर भी गूंथ दूं, तब कहोगी तो चलूंगी।

मैं—अच्छा।

वह उठकर भाभी के पास चली गई।

मैं जानती थी, भाभी मुझे रोकेंगी नहीं। वही हुआ। उन्होंने कह दिया—जाती क्यों नहीं। मनाई तो नहीं है।

मैं, रामू और सरन तीनों घरसे निकल कर चले ।

छोटी भाभी सुधा को नहलाकर उसके बाल सुखा रही थी । झट-से मुझे बिठाने लगीं । मैंने कहा—भाभी इस तरह तुम क्या मुझे पराया बना डालोगी ? क्या मैं अपने आप बैठने के लिए आसन भी तलाश न कर सकूंगी ?

भाभी ने हँसकर कहा—अच्छी बात है । मैंने तो सोचा था, इस घर में तुम्हें यह सब कहाँ मिलेगा । और भी एक बात थी, तुमने तो अब तक खबर ही न ली थी । मैं तो यही समझ बैठी थी कि घर से निकल कर मैं सबके मन से भी निकल गई हूँ ।

मैं—सो कभी हो सकता है भाभी ।

भाभी—वही तो देखती हूँ ।

मैं—भाभी, पर इस घर में कितने दिन और रहोगी ?

मैं क्या इच्छा से आकर रही हूँ ?—कहते-कहते उनका मुंह फीका होगया । फिर बोलीं—रानी, तुम जानती हो क्या मेरे व्यथा नहीं होती ? अगर मैं अपना हृदय दिखा सकती । तुम्हारे भैया का मुंह देखती हूँ तो मुझे रुलाई आती है, परन्तु इसके सिवा और कोई उपाय भी तो नहीं है । बोलो, है ?

मैं क्या उत्तर देती । चुप रही ।—प्रसंग बदलने की चेष्टा करते हुए मैंने रामू से, जो अब तक सहमा

हुआ मेरे ही पास बैठा था, कहा—ले उठ, जा अपनी चाची के पास । तब तो चाची-चाची ही कर रहा था ।

भाभी ने रामू को गोद में खींचकर प्यार कर लिया कहा—बेटा, अब तू चाची को भूल जा । देख मैं तो तुझे भूल गई थी । अपनी माँ को अब प्यार किया कर ।

रामू कुछ नहीं बोला । इसी समय पड़ोस की एक लड़की ने आकर कहा—रामू को उसकी माँ बुलाती है । लेजाऊँ ?

मुझे बहुत बुरा लगा । भाभी को भी लगा होगा यह उनकी आकृति से प्रतीत होता था । परन्तु हम दोनों में से किसी ने भी कुछ नहीं कहा ।

वह लड़की रामू से बोली—चल रामू ।

रामू और सुधा मिट्टी को गीली करके मकान खड़ा करने लगे थे । रामू ने कहा—मैं नहीं जाता ।

लड़की ने रामू का हाथ पकड़ लिया और उसे जबरदस्ती खींच लेगई । शायद ऐसा ही आदेश उसे रहा होगा ।

भाभी ने ठंढी सांस लेकर कहा । चलो अच्छा ही हुआ । रामू रहता तो तुम्हें आजही जाना पड़ता । अब दो-एक दिन रह लोगी ।

मैंने कहा—शायद नहीं । बड़े भैया की देख रेख आजकल विशेष रखनी पड़ती है । भाभी तो अपने को ही

नहीं सँभाल पा रही हैं। इस परिवर्तन से सब अस्तव्यस्त-सा होगया है।

आज असमय ही भैया देवधर लौट आये। मुझे देखकर बोले—अरे, आज तो विनू भूल पड़ी है।

भाभी—आज कैसे आगये ?

देवधर—योंही सिर में दर्द था।

भाभी—कब से ? तबियत तो ठीक है ?

भैया देवधर ने कुछ उत्तर नहीं दिया।--थोड़ी देर में मुझसे पूछने लगे—विनू, बड़े भैया को नौकरी की क्या जरूरत पड़ गई ? क्या श्रीधर नहीं संभाल सकते ?

मुझे कुछ मालूम न था। भाभी ने कहा—क्या कहते हो ? दादा नौकरी करेंगे ?

जरूरत होगी तो क्यों न करेंगे। तीन मील सबेरे जायँगे, तीन मील शाम को चलकर आयेंगे।—मैंने सुना है उन्होंने एक कारखाने में नौकरी कर ली है—कहते कहते उनकी आवाज भर गई।

इस घटना के बाद मेरा रहना जरूरी न था। इसलिए थोड़ी देर बाद में चली आई। भाभी ने भी नहीं रोका। केवल इतना ही कहा—जल्दी किसी दिन आना।

मैंने कहा—आऊँगी।

मैं भैया देवधर के साथ संध्या होते-होते घर पहुँच गई। बड़े भैया घर पर मौजूद न थे। न मझले भैया

ही अभी आये थे। भाभी बैठी एक मालिन से बातें कर रही थीं। शायद देवर-देवरानी के आचरण पर ही टीका-टिप्पणी हो रही होगी।

[५]

बड़े भैया नौकर होगये । इस पर भैया देवधर और छोटी भाभी, मझले भैया और मुहल्ले-टोले वाले सबको बुरा लगा। कई लोगों ने उन्हें समझाया । मझले भैया ने तो बार बार कहा, पर वे कब माने ? मैंने कुछ कहा तो नहीं पर उनकी अवस्था देखकर मुझे उनका यह कार्य उचित नहीं लगा, तो भी न जाने क्यों उन्होंने अपने आपको इस नये रास्ते पर डाल दिया । उन्होंने सबको अपनी बातों के आगे निरुत्तर कर दिया । वे कहने लगे— जीवन को स्वादिष्ट बनाने के लिए उसमें भी परिवर्तन की आवश्यकता है । एकरसता में स्वाद कहाँ है ? मैं यह अनुभव कर चुका हूँ ।

एकान्त में बैठ कर भाभी ने पूछा—परन्तु यह नौकरी

निभेगी कैसे ? इतनी दूर चलकर जाना और फिर लौट आना हो सकेगा ?

क्यों न हो सकेगा। जीवन को किसी-न-किसी उपयोग में तो लगाना ही है। श्रीधर की चिन्ता है। सो मैंने तय कर ही लिया है। रही विनू सो वह कितने दिन की है, कह कर वे मौन होगये।

भाभी को उनके संकेत समझ में न आये। उन्होंने जिज्ञासा की क्या कहते हो ?

भैया—यही कह रहा हूँ कि आने-जाने की अड़चन से छुटकारा पाने के लिए, और यों भी, श्रीधर के लिए बहू लाकर उसकी गृहस्थी जुदा देना जरूरी है।

भाभी—हूँ।

भैया—तब तक हम लोग यहीं हैं। उसके बाद आने जाने का सवाल हल हुआ समझो। वहीं चल कर रहेंगे। एक घर देवधर ने सँभाल लिया। दूसरा श्रीधर पर छोड़कर निश्चिन्त हो जायेंगे।

भाभी—परन्तु इस खटराग की आवश्यकता ही क्यों है ?

भैया—तुम्हीं लोगों के लिए ?

भाभी इससे कुछ कर्कश होकर बोलीं—ऐसी ही तो मेरी फिक्र है। मेरे ही लिये तो सब काम होते हैं।

भैया—पराई रोटियाँ और किसे चुभती हैं ? मैं तो 'अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम' का मानने

वाला हूँ । जीवन निठल्लेपन में ही गुजार दिया है।

भाभी—भगवान ने मुझे भी तुम्हारी तरह सुबुद्धि दी होती ।

भैया— हाँ, दी होती तो मुझे इस की जरूरत भी न पड़ती ।

तो फिर मैं ही सब संकट की जड़ हूँ । मैंने तुम सबका क्या बिगाड़ा है ? क्यों नाहक मेरे पीछे पड़े हो ? जहाँ जिसकी इच्छा हो रहो। जो जिसके जी में आये करो । मुझे व्यर्थ ही लपेटते हो ।—कहकर भाभी फफक-फफक कर रोने लगीं ।

भैया—ये दोष देना नहीं हैं । तुमने एक अवांछित स्थिति से मेरा उद्धार किया है ।

भाभी—मैं भला क्या उद्धार करूँगी ?

भैया—नहीं सच, तुमने मुझे उस बात के लिए चेताया, जब मैं जीवन भी उसे भूले रहा हूँ ।

भाभी—व्यर्थ बातें न बनाओ । अगर मेरे सर्वस्व त्याग से तुम्हारे अजगर बने रहने की संभावना हो तो मैं तुम सब लोगों के मार्ग से हट जाऊँगी ।

भाभी आँचल में मुंह छिपाकर जाने को उद्यत हुई तभी भैया ने उसका हाथ पकड़कर खींच लिया और कहा—तुम्हारा यही आचारण मेरे लिए असह्य हो उठता है । आग लगाकर तुम उसे बुझाने को दौड़ती हो ।

भाभी हाथ को झटककर—छोड़ो, मैं तो आग ही लगाती हूँ। तुम पानी बरसाते हो। बरसाओ, खूब बरसाओ।

भैया—परन्तु यह क्या तुम्हारी ही प्रेरणा न थी?

भाभी—मेरी प्रेरणा बिना कुछ होता भी है?

भैया—इसकी तो आशा भी नहीं है कि सब कुछ किसी एक ही व्यक्ति की प्रेरणा के अनुसार हो।

भाभी—मैं चाहती भी नहीं।

इस लंबे विवाद का अंत मैंने ही किया। मैंने सामने जाकर कहा—भाभी, मूली और आलू-गोभी के साथ कोई दाल भी होगी?—और नमक शायद तो बिलकुल नहीं है।

भाभी ने कुछ उत्तर नहीं दिया परन्तु उठकर मेरे साथ चल दीं। भैया ने भी उन्हें रोका नहीं।

इस घटना के तीसरे ही दिन संध्या समय बड़े भैया ने मँझले भैया को बुलाकर कहा—देखो श्रीधर, वह जो गंगाचरणजी की लड़की है; सो तो तुम्हारी देखी-भाली है?

मँझले भैया—हाँ है तो।

बड़े भैया—तो यही कि मैंने उसके पिता से तुम्हारे विवाह की चरचा की थी। वे तैयार हैं। सो भैया अब तुम्हारी भाँवरें मुझे इसी अगहन में डाल देनी हैं।

परन्तु मैं तो विवाह के झंझट में पड़ना नहीं चाहता—मँझले भैया कहकर एक ओर खड़े हो गये।

बड़े भैया कुछ देर चुप रहकर निश्चय के दृढ़ स्वर में बोले—लेकिन उसमें पड़े बिना भी तो उद्धार का कोई दूसरा उपाय नहीं है। मैं जाकर कटरा के आस-पास कहीं रहूँगा। देवधर अलग है। तुम्हें ही इस घर में रहना है। यही समझ कर मैंने पक्की-पोढ़ी कर दी है।

भैया श्रीधर की गंभीर उदासी और चिन्तित आकृति से जो कई दिन तक उनके चेहरे पर बनी रही मैं मन ही मन बड़ी दुखी थी। जैसे वे असमंजस के भँवर में डोल रहे हों, जैसे उन्हें किसी निश्चय का बलवान सहारा न मिल रहा हो।

उनके कमरे को बुहारते समय अधजला एक कागज का टुकड़ा मेरे हाथ पड़ गया। ये कौन से कागज जल गये हैं यह देखने के लिए मैंने उसे उठा लिया। न जाने कब का लिखा मँझली भाभी के पत्र का वह अंश था। मालूम पड़ता है अपनी स्वर्गीय पत्नी की स्मृति को वे अब तक सुरक्षित किये हुए थे। उसी स्मृति-चिन्ह को आज उन्होंने दीपक की भेंट कर दिया है।

मेरी आँखों के सामने उनके हृदय की अनेक करुण-मधुर भावनाएं साकार हो गईं। जी में आया कि थोड़ी देर बैठकर जी भर कर रो लूं।—पत्नी के मरने के बाद उनका चेहरा कभी इतना विवर्ण देखा नहीं गया था। प्रतीत होता है कि एक भयानक संघर्ष उनके जी में चल

रहा था । किन्तु घटनाओं के चक्र को किसने रोका है ? विवाह हो गया । एक सोलह वर्ष की वधू और घर में आगई । उम्र में एक वर्ष छोटी परन्तु संबंध में बड़ी अपनी उस नवीन भाभी को पाकर मैं एक नई दुनियाँ का अनुभव करने लगी ।

बड़ी भाभी ने नवागत वधू को संबोधन करके कहा—लो, इस घर-बार को संभालो । मैं इस गृहस्थी का बोझ उठाते-उठाते इसी उम्र में बूढ़ी हो गई हूँ । कुछ दिन इससे छूट जाऊँगी तो सुख की साँस ले सकूंगी ।

मँझली भाभी ने सुशील और शिक्षित वधू की तरह उत्तर दिया—परन्तु जीजी, आपको छोड़ने ही कौन देगा ?

बड़ी भाभी—छोड़ने की बात जाने दो, कहो रोक ही कौन लेगा ? इनके जी में जाने की आगई है तो हम जायँगे ही । अब तक लौंडी-बाँदी की तरह बहुत काम कर लिया है परन्तु सब की नजर में राज ही करती रही हूँ । सो अब कुछ दिन राज-पाट छोड़कर गरीबों का जीवन भी जीकर देखलूं ।

मँझली भाभी—परन्तु जीजी—

बड़ी भाभी—उसे छोड़ो । दो चार दिन में घर-गृहस्थी से परच जाओगी, तब जी लगा रहेगा; फिर तुम्हारी देवरानी तो पास ही रहती है । शायद वही खिंचकर आ जाय । आ भी क्यों न जायँगी । एक मैं ही तो जहर

की पुड़िया हूँ । मेरे पास कोई क्यों आये ?

मँझली भाभी—नहीं दीदी, यह सब कैसे हो सकता है ?

बड़ी भाभी—हो क्यों नहीं सकता है । होनहार को कौन रोक सकता है ? वह होकर ही रहेगा ।

धीरे-धीरे यह निश्चय होगया कि भैया चले ही जायँगे । क्या क्या ले जायँगी और क्या नई बहू के लिए पुराने मकान में छोड़ जायँगी यह सब शायद बड़ी भाभी ने सहेज लिया । तभी तो दो तीन दिन बाद ही उन्होंने कुंजियों का गुच्छा, जो सदा उनके अंचल में झूलता रहता था, जो उनके गृह-स्वामिनी होने का सबूत था, नई बहू को सौंप दिया । इतनी तटस्थता और इतने वैराग्य से उन्होंने कभी लोहे की इन चावियों को न देखा था । आज वे एक बड़े भार को जैसे अपने कंधों से उतार कर अलग होगईं ।

मेरे गौने की बात थी, परन्तु उसमें एक विघ्न आपड़ा । मेरे श्वसुर के परिवार में एक गमी होगई । गौने का मुहूर्त टल गया । परन्तु मैं कहाँ रहूँ, यह प्रश्न शायद बड़े भैया के मस्तिष्क में घूम रहा था । अपने कर्तव्य के प्रति वे सदा से सतर्क रहे हैं, यद्यपि नौकरी या अन्य कोई काम न करके सदा उनकी गिनती निठल्लों में ही होती रही है । बड़ी भाभी के नजदीक तो उनका जीवन दासता की सतह से शायद ही ऊँचा रहा हो ।

मालूम पड़ता था, भैया मेरे लिए कुछ निश्चय नहीं

कर सके हैं। अपने साथ लेजाकर बड़ी भाभी से मेरा मोरचा लगवाना वे शायद पसन्द न करते हों या नई बहू के साथ छोड़ देने में मेरे मन की भावनाओं को ठेस लग सकती है, यह सोचते हों। उनके मन को बात तो मैं कैसे कह सकूं, परन्तु हाँ कुछ इसी तरह का असमंजस पड़ रहा था। मेरे लिए बड़े भैया ने सदा इसी प्रकार गंभीरता से सोचा है, सदा ऐसा ही प्रयत्न किया है कि मैं सुखी रह सकूं। घर में सब के ऊपर नियंत्रण रखने की दृढ़ता दिखाकर भी उन्होंने सदा मुझे स्वच्छन्दता दे रक्खी थी। लड़कियाँ तो चार दिन की मेहमान हैं उनका मन क्यों मारा जाय ? यह कह कर उन्होंने सदा मुझे भाइयों से अच्छी तरह रक्खा है। उनके इसी असीम स्नेह के कारण मैं भी उनके हृदय के बहुत समीप पहुँच सकी हूँ। उनके हृदय की उथल-पुथल को मैं जैसे बहुत जानती हूँ।

मेरे संबंध में उनका अंतिम निर्णय इस बात का सबूत है कि वह उनके मस्तिष्क को बेचैन किए था परन्तु निर्णय एक दम असंभावित होकर भी मेरे मनोनुकूल हुआ। भैया ने कह दिया—बिनू अपनी छोटी भाभी के साथ रहेगी।

बड़ी भाभी के सामने उनका यह प्रस्ताव अनुचित था। जो उन पर कटुता का लांछन लगा कर अलग जाकर रही है, जिसने उनके बड़प्पन की अवहेलना की है जिसने चलती हुई गृहस्थी में इतने बड़े परिवर्तन को उपस्थित किया है,

जिसने वृद्धावस्था में बड़े भैया को रोजी तलाश करने के लिए घरबार छोड़ने की नौबत ला दी है, उसीको क्यों इतना बडप्पन दिया जाय कि दुनियाँ कहने लगे कि वेचारी भतीजी और ननद दोनों को रखती है। बड़े भैया और मझले भैया से इतना भी न हुआ कि दो चार महीने बहिन को ही रख लेते।

यही सब सोचकर बड़ी भाभी ने कहा—मैंने तो सब तैयारी करली थी। सब लोग वहीं चलते परन्तु यदि यहीं रखना है तो नई बहू के पास ही क्यों न रक्खें? यहाँ कोई है भी नहीं। बहू को कुछ मालूम भी नहीं है।

भैया विवाद नहीं उठाया, बोले—अच्छी बात है। जैसा समझो कर लो।

आगे कोई बात न चली। इससे यही निश्चय प्रतीत होने लगा कि मुझे कहीं आना-जाना नहीं है। नई बहू के साथ ही रहना होगा! परन्तु जब बड़ी भाभी के जाने का समय आया और सामान गाड़ी पर रक्खा जाने लगा तब नई बहू ने आकर कहा—जीजी, खाली गाँव का राज्य लेकर मैं क्या करूँगी? छोटी बहू को जो कुछ मिला लेकर अलग हो बैठी। बाकी आप लिये ही जाती हो। टूटी खाटें और फूटे कठौते किसके लिए छोड़े जाती हो? इन्हें भी लेती जाओ न।

बड़ी भाभी वज्राहत-सी खड़ी सुनती रहीं। उनका..

चेहरा जल-भुनकर राख होगया परन्तु मुंह से एक शब्द भी न निकला ।

नई वहू एक वात कहना भूल गई। मेरा जी होता था कि उनकी ओर से इतना मैं और जोड़ दूँ—और ऊपर से खाने को एक धींगरी छोड़े जाती हो।

वहुत देर में साँस लेकर वड़ी भाभी ने कुछ कहने का उपक्रम करना चाहा। वे वोली—वहू, यह कहती क्या हो? ये सन्दूक और यह सामान पड़ा है, जिसमें रकम समझती हो उसे रखलो। मैं माँग कर खा लूँगी। तुम समझती—हो वड़ी वहू संपत्ति छिपाये लिये जा रही है। मैं धन की ऐसी भूखी नहीं हूँ। अगर होती, तो आज तुम्हें इस, देहरी के दर्शन भी न होते।

नई वहू ने उसी प्रकार किन्तु शान्त भाव से कहा—मुझे तलाशी थोड़े ही लेनी है। मैं तो वात कहती हूँ जीजी। उन्होंने इतने दिनों से कमाया है, सवके मुंह से यही सुन रही हूँ। वह सव गया कहाँ?

वड़ भाभी—तुम्हें तलाशी नहीं लेनी है तो देवर से कह दो वे सव वस्तु सँभाल लेंगे।

मँझले भैया देर से कहीं वाहर गये थे। वड़े भैया भी घर में न थे। वे गाड़ी के पास खड़े राह देख रहे थे। इस अकस्मिक कांड का किसी को गुमान भी न था!

सामने से मझले भैया को आते देख कर नई वहू ने

तो घूंघट काढ़ लिया और बड़ी भाभी उनके सामने चुनौती-सी देती हुई बोलीं—लालाजी, लो यह सामान पड़ा है। अच्छी तरह देख लो मैं क्या-क्या लिये जाती हूँ। तुम्हारी बहू के लिए घर में टूटी खाटें और फूटे कटौते छोड़कर तो मैंने सभी कुछ बाँध लिया है।

मेरा अनुमान गलत था कि किसी को इस घटना का गुमान भी न होगा। पर देखती हूँ नई बहू की उनसे बातचीत हो चुकी थी, और संभवतः उनसे रुष्ट होकर ही उन्होंने यह प्रहार करने का सुयोग निकाल लिया था।

मझले भैया ने कहा—भाभी यह क्या कहती हो? यह घर किसका है? यह सामान और किसका है? तुम्हारा अधिकार है तुम चाहे जो चीज ले जाओ चाहे छोड़ जाओ।—फिर तुम जा ही कितने दिन के लिए रही हो?

यह सुनकर बड़ी भाभी के हृदय का बाँध खुल गया, वे फफक-फफक कर रो पड़ीं। मुझे भी रुलाई आने लगी। मझले भैया ने फिर कहा—भाभी तुम बड़ी हो। हमारी माता के समान हो।

नई बहू इस स्नेह के नाटक को बरदाश्त न कर सकीं। वे पैर झमझमाती हुई घर के भीतर चली गईं। उनके चले जाने के बाद भी उनके रोष की छाया उस स्थान को क्षुब्ध किये रही।

बड़ी भाभी ने अपने को रोककर कहा—लालाजी, हम

सब एक हैं, पर वहू के लिए तो जब तक वह कुछ दिन रह न ले यह नहीं सोचा जा सकता है। धीरे-धीरे सब समझ जायंगी।

भैया—नहीं भाभी, यह भी कोई समझने की बात है! क्या इतना नहीं समझती है?

भाभी—समझती तो ऐसी बात कभी मुंह से न निकालती।

भैया—मैंने तो पहले ही मना किया था। भैया ने माना ही नहीं। उसका फल सामने है।—मेरा तो सि नीचा हुआ जाता है। भाभी, मुझे क्षमा करो।

भाभी—तुम युग-युग जियो। मेरी आत्मा तुम्हें असीसती है। तुम्हारा कोई अपराध नहीं है लालाजी। अपराध तो वहू का भी नहीं है। वह ठीक ही कह रही है। मुझे क्या अधिकार है कि जीवन भर यहाँ खा और खर्च करके भी जाते समय अपने साथ इतना सामान ढोकर ले जाऊँ?

भैया—बस करो भाभी! बहुत हुआ। अब मुझे आज्ञा दो, सामान ले चलकर गाड़ी पर रक्खूं।

भाभी—पहनने के कपड़ों को छोड़कर मेरे साथ कुछ नहीं जायगा—कुछ भी नहीं।

भैया—नहीं भाभी!

भाभी—मैं यह ठीक कह रही हूँ। वहू को यह जतल

देने का यही उपाय है कि मैं कुछ न ले जाऊँ। इससे वह यह समझ लेगी कि वह और यह घर भिन्न नहीं हैं।

भैया—उसे अधिकार क्या है यह सब कहने-सुनने और समझने का ?

भाभी—अधिकार की बात बतानी नहीं पड़ती। उसकी तो स्वतः स्फूर्ति होती है।

भाभी ने बक्स खोलकर अपने, बड़े भैया के और बच्चे के कपड़े निकाल लिए। उन्हें एक पोटली में बाँध लिया। बक्सों की चाबियाँ मझले भैया के आगे पृथ्वी पर फेंक दीं; और कहा—ये लेकर बहू को दे देना। देर हो रही है।

मझले भैया चाबी वापस फेंककर बोले—ना-ना भाभी, यह क्या करती हो ? कहीं ऐसा हो सकता है। किसी के कहने से तुम अपना अधिकार छोड़ दोगी ? तुम्हें मेरी सौगन्द।

अच्छा लाओ मैं बहू को ही सँभला देती हूँ—कह कर भाभी ने चाबी लीं और भीतर की ओर रोकते रोकते चली गईं। बहू किवाड़ों के पास ही खड़ी थी। उसके ऊपर चाबी का गुच्छा फेंकते हुए वे बोलीं—लो बहू, सब सामान सँभाल लेना। मैं खुद ही अंधी होकर सब कुछ बटोरे लिये जाती थी।

वहू कुछ न बोली। चाबी पैर से ठुकराकर खड़ी

रही। इधर मझले भैया कह रहे थे—मेरा मरा मुंह देखो भाभी, अगर तुम मुझे रोको। मैं कल ही सब सामान वहाँ डाल आऊँगा।

भाभी—नहीं लालाजी, तुम्हें अपने बड़े भैया का बुरा देखना पड़े जो तुम इस बात में बोलो भी—। मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि वे किस प्रकार गृहस्थी चलाते हैं। भूखों तो मरने से रही। ऐसी नौबत आने पर तो इसी देहरी पर आना है। अपनी चीज अपने घर छोड़ जाते मुझे रंच भी कोई दूसरा विचार नहीं हो रहा है।

मझले भैया—भाभी, यह मेरे ऊपर अन्याय है। मेरे हृदय को जलता हुआ छोड़ जाने का तुम्हें अधिकार है।

भाभी ने कुछ नहीं सुना। वे जल्दी-जल्दी चलकर गाड़ी पर जा बैठीं। मझले भैया वहीं पृथ्वी पर बैठ गये और उनके मुख से इतना ही निकला—उफ्!

बड़ी भाभी सब कुछ छोड़कर विजय-श्री से उज्ज्वल हो उठीं और मझली भाभी सब पाकर भी बुझी हुई राख की भाँति मलिन हो गईं। ऐसा मालूम पड़ा जैसे उनके मुख पर किसी ने कालिमा पोत दी हो। उस संध्या को किसी ने कुछ खाया-पिया नहीं। मेरी एक बार भी इच्छा न हुई कि मैं अपने कमरे से निकलकर घर में फैली हुई निस्तब्धता को भंग करूं। उस दिन मझली भाभी भी

अपने पैरों के आभूषणों की झनकार को मौन में लपेटे हुए धीरे-धीरे जाकर पड़ रहीं। कोई किसी से बोला तक नहीं।

[६]

मझली भाभी में अवस्था के अतिरिक्त और किस बात की कमी है यह तो मैं नहीं जानती, और जान भी शायद जल्दी न सकूं, परन्तु उनमें अपने स्वत्वों और अधिकारों की रक्षा की विचित्र क्षमता है यह मानना ही पड़ेगा। बड़ी भाभी से जिस प्रकार उन्होंने सारे अधिकार ले लिये वह एक नाटकीय कौशल से कम नहीं है; परन्तु उसके संबंध में कुछ न कुछ अनुमान स्थिर किये जा सकते हैं। लेकिन आज अचानक सुधा को छोटी भाभी से छीन लेकर तो उन्होंने हद कर दी।

बड़ी भाभी के जाते समय उदर-शूल के कारण छोटी भाभी न आ सकी थीं, शायद इसीलिए आज वे चढ़ते दिन ही आ पहुँचीं। भैया देवधर काम पर गये और वे सुधा को लेकर इधर चली आईं। छोटी भाभी के चेहरे

पर तो ऐसी कोई झलक नहीं थी जिससे माना जा सके कि वे यह पता लगाने आई होंगी कि बड़ी भाभी किस प्रकार घर से विदा हुई थीं। परन्तु मेरे पापी मन में एकबार ऐसा विचार भी उठा और तब क्षणभर के लिए छोटी भाभी का ज्वलन्त व्यक्तित्व मेरे मन के अन्दर निष्प्रभ हो गया। किन्तु उनसे क्षणभर बात करके, तथा उनके निष्कपट हृदय की झलक ज्यों की त्यों पाकर, मेरा मन गद्‌गद् हो गया। जी हुआ कि अपने अन्तर की तमाम दुर्भावनाओं को उगल दूँ और उनके चरणों पर गिरकर क्षमा माँगूं; लेकिन इतना साहस न कर सकी।

छोटी भाभी अपनी नई जेठानी के प्रति ठीक-ठीक ही थीं। दोनों में घर-गृहस्थी पर जब घंटों चरचा चलती और सौहार्द्र प्रदर्शित होता रहा तो अल्प परिचय की खाई भी भर गई। कम से कम मुझे तो ऐसा ही प्रतीत हुआ, पर भगवान जाने क्यों, कुछ दिनों से मुझे जो बात जैसी प्रतीत होती है, वह ठीक उसके विपरीत होती है।

आज भी वैसा ही हुआ। संध्या से पहले ही जब छोटी भाभी जाने को उठ बैठीं और सुधा की तलाश करने लगी जिसे मैंने अपने कमरे में थपकी देदेकर सुला दिया था, उसी समय मझली भाभी ने बिना किसी संकोच के कहा—बहू, सुधा अब वहाँ तो न रह सकेगी। मैं तो आज खुद ही उसे बुला-भेजने वाली थी।

छोटी भाभी का चेहरा निष्प्रभ हो गया; परन्तु उन्होंने अपने को सँभाल कर कहा—लेकिन वह मेरे से हिल जो गई है। वह यहाँ एकाएक तो रह नहीं सकेगी।

मझली भाभी—इसकी चिन्ता मत करो। मैं भी रखना जानती हूँ। विमाता के पास लड़की न रहे। चाची के पास रहे। दुनियाँ इसका क्या मतलब लगायेगी ?

छोटी भाभी—मुझे दुनियाँ की बात से मतलब नहीं।

"तुम्हें न हो मुझे तो है!"

"परन्तु एक दम वह कैसे रह जायगी ?"

"रह जायगी. कह जो रही हूँ, और इसकी चिन्ता तो तुम्हें न होकर मुझे होनी चाहिए।"

"पर यों अचानक कैसे छोड़ जाऊँ ?"

"तो क्या किसी लिखा-पढ़ी की जरूरत होगी ? किसी की लड़की को उसके माँ-बाप के पास छोड़ जाने में तो ऐसी किसी बात की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।"

छोटी भाभी खीझकर बोलीं—ऐसी बात है तो रख सकती हो। ऐसे वह मुझे कौन सनाथ करती है ? दिन भर काम ही बढ़ाती है।

"हाँ हाँ ठीक तो है। ऐसे भार को क्यों रखना ?"

छाटी भाभी—नहीं रक्खूँगी।

इस कथन में उनका स्वर काँप रहा था। मझली भाभी उसी भाँति निरपेक्ष भाव से बोलीं—अच्छी बात है।

जाकर उसके कपड़े भिजवा देना।

भिजवा दूंगी—कहकर छोटी भाभी चलने लगीं। छल-छलाई हुई आँखें मेरी ओर करके मुझसे विदा लेने का भी उन्हें साहस न हुआ। मेरी अवस्था उनसे भी अधिक दयनीय थी। वे यदि मेरी ओर देख देतीं तो मैं अपना सिर उनकी छाती में गड़ा देती और उमड़ रहे अश्रुप्रवाह को बहने के लिए खुला छोड़ देती।

देवरानी जेठानी के इस संभाषण में एक शब्द भी मुंह से न निकाल कर मैं अपनी निरपेक्षता को प्रदर्शित कर रही थी। परन्तु हृदय भीतर से अस्थिर हो रहा था।

संध्या समय श्रीधर भैया घर लौटे और उधर सुधा ने मेरे कमरे से रोना आरंभ किया—भाभी, भाभी! ऊँ-ऊँ, ऊँ-ऊँ!

मैं जानबूझकर बैठी रही। विमाता के अधिकार को जताने वाली जाकर किस प्रकार उसे चुपाती है यही तो देखना था। परन्तु मझली भाभी ने जैसे सुना ही नहीं। वे साग छौंकने में ही लगी रहीं। भैया ने किसी की ओर संबोधन किये बिना ही पूछा—ओहो, आज तो सुधारानी की बाँग सुनाई पड़ रही है! तो क्या इतने दिन अपनी भाभी के पास रहकर भी ताल स्वर से रोना नहीं सीख पाई? यह तो बड़ी बेसुरी आलाप है।

मझली भाभी ने कुछ धीरे-धीरे कहा। पर क्या कहा, यह न मैं सुन सकी, न भैया श्रीधर सुन ही पाये।

भैया ने शायद समझा था कि छोटी भाभी भी आई हैं, और घर में ही कहीं होंगी। इसलिए वे फिर कहने लगे—अरी सुधा चुप क्यों नहीं रहती पगली ? तू नहीं जानती कि रो-रोकर तू खुद बदनाम नहीं होती अपनी भाभी को भी बदनाम करती है।

सुधा को इससे क्या प्रयोजन ? वह तो उसी तरह 'भाभी-भाभी, ऊँ ऊँ ऊँ-ऊँ, की रट लगाये थी।

भैया—अच्छा भाई, सुधारानी की भाभी किधर हैं ? वे उसे लेती क्यों नहीं ?

पर छोटी भाभी तो न थीं। इस पर मझली भाभी खुद उठकर गईं और सुधा को मनाने लगीं; परन्तु वह क्योंकर मानती ? वह तो उनकी गोद में ही न आती थी। 'भाभी-भाभी' कह कर रोती ही जाती थी।

भैया ने पूछा—तो क्या देवधर की बहू नहीं आई ?

अब मुझे बोलना ही पड़ा। मैंने कहा—वे चली गई हैं।

"और सुधा को यहीं छोड़ गई हैं ?"

मझली भाभी—लड़कियाँ किसे सनाथ करती हैं ? उन्हें भी अगर वह भार हो रही हो तो कौन अचरज ?

मैं नहीं जानती कि क्यों मेरे भीतर का ज्वालामुखी फूट पड़ा। मैंने आवेश में आकर चिल्लाते हुए कहा—क्या कहती हो मझली भाभी ? उनसे इस तरह सुधा को

छीन कर अब उन्हीं पर दोषारोपण करती हो ?

"तो क्या सुधा को छीन लेने का मुझे अधिकार नहीं है ?"

"हो सकता है। पर किसी निरपराध पर अपराध थोपने का अधिकार किसी को नहीं है।"

"तो क्या उन्होंने ये शब्द नहीं कहे ?

"तुम्हारे कहलवाने से कहे।"

"हाँ।"

भैया अब तक किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। इस अचानक बोल-चाल के लिए वे तैयार न थे। बोले—यह सब क्या हो रहा है ? हँसते-खेलते घर को कलह के कीचड़ में डुबा देने का यह ढंग तो अच्छा नहीं मालूम होता। यह दूसरी बार मैं देख रहा हूँ।

भाभी—मुझे मेरे घर भेज दो। घर कीचड़ में डूबने से बच चायगा।

भैया कुछ नहीं बोले। सुधा इस हल्ले-गुल्ले से सहम गई थी। वह कुछ कुछ चुप हो गई। अब फिर 'भाभी-भाभी' करने लगी। मझली भाभी की गोद से वह नीचे उतर आई, और मेरी ओर दौड़ चली परन्तु भाभी ने उसे जोर से पकड़ रक्खा।

मैं उठकर अपने कमरे की ओर चली गई ! वहीं से थोड़ी देर में सुन पड़ा कि भैया देवधर सुधा के कपड़े

पहुँचाने आये हैं। भाभी ने कपड़े ले लिये। मझले भैया बोले—कपड़े तो मँगवा लिये हैं, पर सुधा यहाँ रहेगी कैसे? वह तो 'भाभी-भाभी' चिल्ला रही है।

मझली भाभी—तो तुम लौटा दो। मैं तो मँगाने की भूल कर ही बैठी।

भैया—हाँ देवधर! मैं कहता हूँ। तुम ले जाओ। सुधा को भी ले जाओ। वह यहाँ रोते-रोते मर जायगी।

देवधर—नहीं, रोयेगी क्यों? जब रोयेगी तभी बुला लेंगे। कौन दूर है?

कह कर वे चले गये। मझले भैया भी चुप हो रहे। भाभी सुधा को बहलाने की भरसक चेष्टाएँ करती रहीं; पर वह कलमुहीं चुप ही न होती थी। आखिर उन्हें गुस्सा आगया और चिढ़कर उन्होंने दो चार हलके-हलके तमाचे उसके गालों पर जड़ दिये। इस तरह उसे भय-भीत करके दोनों एक ही चारपाई पर सो गईं।

मैं अपने को सदा ही अलग रखती थी पर आज वैसा न कर सकी। मझली भाभी इससे कुछ चकित अवश्य हुई होंगी। किन्तु उन्होंने फिर विशेष कुछ न कहा, तो भी मैं अपने को आज सफल समझ रही हूँ। इसी उमंग से उठकर मैं मझले भैया के पास जाकर भोजन कर लेने का आग्रह करने लगी। उन्होंने शायद आज का रंगढंग देखकर निराहार रहना ही तय किया

था। मेरे अनुरोध से उन्हें अपना निश्चय बदलना पड़ा और भोजन करने का नाटक करना पड़ा पर क्या सचमुच वे कुछ खा सके ?

भोजन के समय उन्होंने सिर उठाकर मेरी ओर देखा भी नहीं। रात को जब एक बार फिर सुधा ने रोना शुरू किया और चुप न होने पर मझली भाभी ने खीझना शुरू किया तो वे झल्लाकर बोले—एक दिन तो हँसी-खुशी से रख लेतीं।

भाभी को भी आवेश आगया। उन्होंने सुधा को अपनी चारपाई से नीचे उतार दिया और कहा—बड़ा अपराध किया मैंने। ले जाओ अपनी लाड़ली को। जहाँ जो चाहे रक्खो। मैं तो सौतेली माँ ठहरी। कौन-सा बड़ा जस मिलने को है ?

सुधा गिरकर हाय-हाय करने और रोने लगी। भैया तो चुप रहे, परन्तु मुझ से न सहा गया। मैं जाकर उसे उठा ले आई परन्तु वह क्यों चुपने लगी। बराबर घंटे डेढ़ घंटे तक रोती रही। जब बिलकुल थक गई तो सिसकते-सिसकते बड़ी मुश्किल से सोई। मेरी आँखों में तो सारी रात नींद न आई। मैं पड़े पड़े अभागी सुधा के भाग्य की चिन्ता करने लगी—बेचारी की माँ तो है नहीं। एक प्यार करने वाली चाची है। उसका प्यार भी उसे बदा नहीं। दुर्भाग्य के नक्षत्र की तरह यह विमाता

कहाँ से उदय हो पड़ी है ? क्या सचमुच ही यह अबोध सुधा के जीवन में कांटे बो देने के लिए ही आई है ? अभी कुछ दिन पहले सारा परिवार एक था। कितनी जल्दी सब बारहबाट हो गये। भैया देवधर कहीं गये, बड़े भैया कहीं गये। यह सब क्या हो गया ? क्या इसी परिणाम के लिए बचपन से सब एक साथ प्रेम से रहे थे ? बड़े भैया क्या सोचते होंगे ? छोटी भाभी आज कितनी उदास होंगी ? बड़ी भाभी के हृदय पर कैसी गहरी चोट लगी होगी ? मझली भाभी देखने में भोलीभाली किन्तु कैसी विकट और अपूर्व हैं ? इतना सब करके भी कैसी बेफिक्री से सो रही हैं ! क्या इनके हृदय में जरा भी सहानुभूति और शील नहीं है ?

मेरी विचारधारा तब टूटी जब भैया श्रीधर लालटेन जलाकर कुए से जल निकालने लगे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्या हो रहा है ? भैया तो कभी इतने सवेरे न उठते थे। आज क्या बात है ? शायद कल के कांड ने उसी प्रकार उनके हृदय को भी सारी रात मथा है जिस प्रकार मेरे, परन्तु तो भी इतने तड़के उठने का कारण क्या है ? मैंने पूछा—क्यों, भैया क्या बात है ? इतनी रात रहे क्यों उठ गये ?

भैया श्रीधर ने अत्यन्त मुलायम स्वर में उत्तर दिया—आज रामू को देखने जाने का विचार है।

प्रभात से पूर्व ही वे शरीर पर एक चादर डाल कर निकल गये। मुझसे भी न रहा गया। मैं भी उठ बैठी। कल के पड़े हुए काम को कर डालने की इच्छा थी, पर हृदय कुछ बेचैन-सा हो रहा था। किसी काम में जी न लगता था। मझली भाभी उठकर उस सब सामान को ठीक कर रही थीं, जो बड़ी भाभी के जाते समय छोड़ जाने से अब तक फैला हुआ पड़ा था।। ऐसा मालूम पड़ता था जैसे उनके लिए कुछ भी हुआ ही न हो। पूरी बेफिक्री से वे अपने हाथों एक-एक वस्तु को रख रही थीं। शायद अपने स्वामित्व और अधिकार को प्रत्येक वस्तु के साथ संलग्न देखना चाहती थीं, परन्तु जड़ वस्तुएँ उनके मनोभाव का उचित आदर न कर पा रही थीं। क्योंकि उसी बीच दो चार ने गिरकर आत्महत्या करली। कई चीनी के प्याले टूट गये और दो तीन काँच टुकड़े-टुकड़े होगये, तथापि वे अपने अधिकार को जमाने में लगी ही रहीं।

धीरे-धीरे दिन चढ़ आया। सुधा अभी तक उठी न थी। मैं अकेली कब तक क्या करती? उठ कर सुधा को ही जगाने चल पड़ी; पर यह क्या सुधा तो बुखार में लहालोट पड़ी थी। शरीर जल रहा था। साँस जोर-जोर से चल रही थी। कभी-कभी वह चौंक भी पड़ती थी।

अनायास मेरे मुंह से निकल गया—अरे ! इसे बुखार कब से होगया ?—परन्तु मेरी बात का उत्तर कौन देता ? मेरा प्रश्न वायु में लीन होगया । अब क्या करूँ, मेरे सामने यही एक प्रश्न था । क्या भाभी से कहूँ पर वे कर ही क्या लेंगी ? वे तो छोटी भाभी से उसे छीन भर सकती थीं । उस तरह विमाता के अधिकार को जता सकती थीं. इससे अधिक वे क्या करतीं ?

मेरा जी नहीं हुआ कि उनसे कुछ कहूँ । अतः मैं जीने पर चढ़ गई और मोती की माँ को पुकारा ? मोती की माँ ऐसे ही अवसरों पर याद आती थी । बेचारी झटपट आ खड़ी हुई—कहो बिटिया ?

मैं बचपन से ही इस वृद्धा मोती की माँ को मौसी कहती थी । मैंने कहा—मौसी, घर में आज कोई नहीं है । सुधा को बुखार चढ़ गया है । जरा भैया देवधर को बुलाना है ।

अच्छी बात है, मैं बुला देती हूँ कह कर मोती की माँ चली गई । परन्तु थोड़ी ही देर में लौट आई और कहने लगी—छोटे बाबू घर नहीं हैं ।

मैं—कहाँ गये हैं ?

मोती की माँ—बहू ने कहा, मालूम नहीं कहाँ गये हैं ।

मैं—और कुछ नहीं पूछा ?

मोती की माँ—और तो कुछ नहीं पूछा ।

मैं—तुमने भी कुछ नहीं कहा ?

मोती की माँ—मैंने इतना ही कहा था कि घर पर कोई नहीं है। सुधा को बुखार चढ़ गया है।

मैं—इस पर भी कुछ नहीं कहा ?

मोती की माँ—कुछ नहीं।

मोती की माँ चली गई। मैं मन ही मन सोचने लगी—छोटी भाभी ने कुछ नहीं पूछा ? सुधा को बुखार चढ़ गया है, यह जानकर भी वे चुप रहीं ? तनिक भी चंचल न हुई ? उनकी इस चुप्पी में क्या उनके हृदय की हलचल व्यक्त नहीं है ? क्या मौन रह कर भी उन्होंने अपनी व्यग्रता और अस्थिरता का संदेश नहीं भेजा है ? अवश्य ही वे तिलमिला रही होंगी।

इसी कल्पना में डूबी मैं देर तक बैठी रही। मुझे लग रहा था कि भैया देवधर अब आते तब आते। भाभी उन्हें आते ही भेजेंगी। किन्तु धीरे-धीरे दस बजे। न कोई आया, न कोई गया।

संध्या को पाँच बजे भैया श्रीधर लौटे। मैं तो सुधा के ही पास थी। बुखार का जोर ज्यों का त्यों बना था। मैंने सुधा को पुकार कर कहा—सुधा ! सुधा ! देख कौन आया ?

भैया मेरा कंठ-स्वर सुनकर उधर ही चले आये, बोले—क्या सुधा शाम से ही सो जाती है ?

मैंने कहा—सो कहाँ जाती है ? आज तो सवेरे से ही बुखार में पड़ी है। दिन भर सिर तक नहीं उठाया।—जरा देखो तो भैया, अब क्या हाल है ?

भैया—अरे, बुखार तो उसे आना ही था। रात कितनी देर तक खुली पड़ी रोती रही।

मैं चुप रही। सुधा के माथे पर बैठी हाथ फेरती रही। भैया आये। सुधा का हाथ देखा, बोले—बुखार तो तेज है। इसे कुछ दिया है ?

मैंने सिर हिलाकर जतलाया—नहीं।

अब भाभी भी आकर खड़ी हो गई। दिनभर शायद मुझसे बचने के लिये ही इधर-उधर के कामों में लगी रहीं थीं। भैया ने भाभी की ओर ध्यान न देकर पूछा—छोटी बहू को कहला दिया था ?

मैं—छोटे भैया को बुलाने के लिए मोती की माँ को भेजा था, परन्तु वे घर पर मिले ही नहीं।

भैया—मैं अभी जाता हूँ। छोटी बहू के बिना—

मैंने देखा छोटी बहू को बुलाने ये क्या जायँगे ? यदि वे न आई तो इन्हें बुरा लगेगा। दिन भर बाद घर में पैर दिया है। आते ही इन झंझटों में इन्हें डाल देना ठीक नहीं। यही सोच कर मैंने कहा—भैया, आप न जायें। उन्हें खबर तो हो ही गई है। वे खुद आ जायँगी। नहीं तो, ऐसी कोई जरूरत भी नहीं है। बुखार

है, उतर जायगा। बात क्या है ?

भैया ने कुछ न कहा। परन्तु वे गये नहीं। उस रात भी सुधा बुखार में तपती रही। कितनी बार 'भाभी' 'भाभी' कहकर पुकारा, पर निष्ठुर भाभी ने उसकी खबर तक न ली।

मैं बैठी सोच रही थी—भगवान् तुम सुधा को लेकर क्या करोगे ? तुम्हारी इतनी बड़ी सृष्टि में क्या ऐसा एक भी खिलौना नहीं है, जिसे लेकर तुम अपना मन बहलाओ ? इस छोटी-सी बच्ची को रहने भी दो। अगर इसे लेना ही था, तो उस समय ले लेते, जब माँ उसे छोड़ कर चल बसी थी। उस समय तो तुमने उसे स्वास्थ्य प्रदान किया, अब जब उसके चारों ओर मोह मन्दिर खड़ा होगया है तब तुम उसे जबरदस्ती छीने लेते हो। इसे कौन आपका न्याय कहेगा ? जब जगत के स्वामी के हाथों ही अन्याय हो तो दुनियाँ में न्याय की किससे आशा करें ?

मझली भाभी काढ़ा औटा कर ले आईं और बोलीं—काढ़े का समय होगया है। हटो, तो पिलाऊँ।

मैं खिसक कर बैठ गई। आज सुधा के बुखार को सातवाँ दिन है। दो-दिन तो मेरे सिवा सुधा का हकीम और डाक्टर या परिचर्या करने वाला कोई न था पर तीसरे दिन से मझली भाभी ने जैसे चोला बदलकर उसका

सारा भार अपने ऊपर ले लिया। कारण कुछ मेरी समझ में नहीं आया, बल्कि पहले तो मुझे उनकी सद्भावना पर सन्देह ही अधिक था परन्तु उनकी एकनिष्ठा और अनन्यता ने मुझे अपने विचारों को बदलने के लिए बाध्य कर दिया। जब से उन्होंने उसकी ओर चित्त दिया है तब से रात और दिन को एक कर दिया। छोटी भाभी से सुधा को छीनते समय उन्होंने जो अधिकार जताया था, उस अधिकार को पूरी तरह चरितार्थ करके दिखा देने में जैसे वे सब कुछ भूल गई थीं। इतने पर भी सुधा की दशा बिगड़ती जा रही थी। इसलिए मुझे सुधा का जीवन सुधा के लिए थोड़ा परन्तु मझली भाभी के लिए अधिक आवश्यक मालूम पढ़ता था और इसी कारण आज रोगी के पास एकान्त में थोड़ी देर बैठ कर मैं भगवान् के निकट उपरोक्त आत्मनिवेदन कर रही थी।

कहते हैं भगवान् अन्तर्यामी हैं। हृदय की आन्तरिक अभिलाषा को वे जानते हैं। जानते न होते तो अखंड तपस्विनी की तपस्या को सफल क्यों-कर करते? आठ-रात-दिन पलक न लगाकर भाभी ने अपूर्व अनुष्ठान किया वह क्या खाली जा सकता था? ग्यारहवें दिन सुधा का ज्वर उतर गया। उसकी हड्डियों में प्राणों को छोड़कर वह भयङ्कर बला टल गई।

भाभी के रूखे केशों में आज स्निग्धता है। उनके

चिन्तित मुखमंडल से वह आवरण दूर होकर आज एक आभा झलक उठी है। आज ही उन्हें वस्त्रों और अपनी वेश-भूषा की ओर ध्यान देने का अवकाश मिला है। अपने दो-चार आचरणों से उन्होंने मेरे हृदय में जो स्थान घेर रक्खा था वह आज बदलना पड़ रहा है। इन्हीं वस्त्रों में तब वे कुछ और लगती थीं, परन्तु आज कुछ और लगती हैं। सुधा के पास बैठ कर जब वे प्यार से बोलीं—'कैसा जी है बेटी ?' तब मुझे लगा कि जैसे सुधा की माँ का कंठ हो।

आकस्मिक और असंभव परिवर्तन का कोई आधार न था। अनेक यत्न करके भी उसका समाधान मेरे जी में न उठता था। बड़ी भाभी के जाते समय और छोटी भाभी से सुधा के सम्बन्ध में बात करते समय, जो मझली भाभी मैंने देखी थीं वे अब कहाँ थीं ? जैसे इतने ही दिनों में उनका वह असली रूप अपनी छाया मात्र छोड़ कर कहीं चला गया हो। अनेक ऊहापोह करने पर भी कोई अनुसंधान न लग सका। मैंने आखिर यही निश्चय किया कि मनुष्य का चरित्र एक पहेली है। उसकी भूलभुलैयों को समझने का दावा इस संसार में कोई नहीं कर सकता।

उसी दिन संध्या को मैं चुपचाप जाकर भैया के कमरे में लेट रही। भैया कहीं बाहर गये थे। इधर वे अक्सर बाहर ही रहते हैं। पिछले दिनों की घटनाओं ने उनके

जीवन को कुछ अस्वादिष्ट बना दिया प्रतीत होता है। वे न घड़ी भर बैठते हैं, न बहुत बातचीत करते हैं। कोई काम हुआ तो कर दिया। नहीं हुआ तो चुपचाप अपना काम करते रहे। सुधा के इलाज में भी विशेष तत्परता नहीं दिखाते हैं। ऐसा भी नहीं प्रतीत होता कि वे भाभी की सुधा के लिए व्याकुलता और उसकी परिचर्या में उनके लीन रहने को न जानते हों, पर उनके आन्तरिक भाव को कैसा समझते हैं इसका मुझे पता नहीं। मैंने सोचा था, आज भैया को कमरे में घुसते ही यह खुशखबरी सुनाऊँगी कि भाभी ने सुधा को आखिर बचा ही लिया। सवेरे जो बुखार उतर गया था वह आज दिन भर फिर नहीं चढ़ा है और अब उसकी दशा बिलकुल ठीक है।

कुछ देर तो मैं उनकी प्रतीक्षा में बैठी एक पुस्तक बाँच रही थी। बाद में वहीं चटाई पर लेट रही। बिलकुल अँधेरा होगया था, जब कमरे के द्वार पर पैंछल सुनाई दी। एक क्षण में भाभी भीतर आगई और भैया के पलंग के पाँयते सिर टेक कर प्रार्थना-सी करने लगीं—मेरे स्वामी! मेरे नाथ! मैंने तुम्हें अपने आचरण से ही तो खो दिया है और उसी से मैं तुम्हें पा-सकूंगी। मुझे विश्वास है कि मैंने अपने आपको बदल लिया है, पर तुम्हें पाने के लिए मैं उतावली नहीं करूँगी। मैं पग-पग चलकर उसी स्थान पर लौट जाऊँगी जहाँ तुम्हें पाया

ा। मेरे जिस स्वार्थ में तुम्हें स्थान न हो, उसे मैं तृणवत
ोड़ दूंगी। तुम जिस मार्ग पर मुझे चलाना चाहते थे,
ह मैंने स्वयं देख लिया है। मैं उसी मार्ग पर चलने के
लिए निकल पड़ी हूँ। तुम देख लेना कि उस पर भी
सी गति से चली जा रही हूँ।

मैं जड़वत् पड़ी थी। मेरी ऊपर की सांस ऊपर और
ीचे की नीचे थी। मैं अपनी उपस्थिति का ज्ञान कराकर
नकी उस एकान्त श्रद्धा को दो आदमियों के बीच की
ीज नहीं बनाना चाहती थी। यदि मुझ में शक्ति होती
मैं वायु के साथ कमरे से बाहर निकल जाती, परन्तु
नुष्य बहुत कुछ होकर भी सर्वसमर्थ कहाँ है ?

भाभी चुप हो गई थीं, परन्तु उनका सिर चारपाई
ी पट्टी पर ही पड़ा था। उनके हृदय की धड़कन, उनके
च्छ्वास की त्वरा, वाणी से भी अधिक उनके भावों को
ाक कर रही थीं। उनकी साड़ी की सरसराहट तक
नाई नहीं पड़ती थी। शरीर जड़वत पड़ा था,
मैं उनके अन्तर की हलचल का आलोड़न विलोचड़न
से प्रत्यक्ष देख रही थी। इतनी स्पष्टता और समीपता
मानव-हृदय का दर्शन मैंने जीवन में पहले कभी न
या था। जी होता था कि मैं किसी मार्ग से भाग
ऊँ। किसी के निजी जीवन को इस प्रकार आवरण-
न देखना एक जघन्य पाप है। वही पाप मुझसे बन

पड़ा था। भगवान के समक्ष और भाभी के समक्ष भी मैं उसके लिए अपराधिनी हूँ, किन्तु मैं वस्तुतः निरपराध हूँ क्योंकि यह अपराध मुझसे जिस अवस्था में बन पड़ा वह इरादतन नहीं किया गया था।

परमात्मा को धन्यवाद है कि भाभी ने इस रहस्य को नहीं जाना। हृदय की गीता का पाठ समाप्त करके वे उठकर चली गईं। मैं भी हल्के पैरों कमरे से बाहर निकल गई। थोड़ी देर में मेरा उनका सामना हुआ तो जी में आया कि मैंने मन में नाना-विध दुर्विचारों को स्थान देकर इनके प्रति जो अन्याय किया है उसके लिए क्षमा माँग लूँ, पर यह सब तो मैं न कर सकी। हाँ, गहरी आत्मतीयता के स्वर में मैंने कहा—भाभी, आखिर तुमने सुधा को बचा ही लिया।

मालूम पड़ता है मेरी जैसी ही उतावली दूसरी ओर से भी प्रेरित कर रही थी। प्रसंग खुल जाने पर वैसी ही आत्मीयता के भाव से वे बोलीं—मौत के मुंह में भी तो मैंने ही डाला था, यह बात न कह कर तुम मेरे साथ अन्याय करोगी!

मैं हँस पड़ी, वे भी खिलखिलाकर हँस पड़ीं। वह निष्कलुप और स्वच्छ हँसी थी।

उसी संध्या को बड़े भैया और छोटे भैया सुधा को देखने आये। बुखार अब नहीं है यह जानकर उनकी

चिन्ता दूर हुई और इसीलिए बड़े भैया शीघ्र ही लौट जाने को उठ खड़े हुए ! भाभी यह देखकर चौके में से दौड़कर मेरे पास आई और बड़े भैया को भोजन करने से पहले न जाने का आग्रह करने को कहा । मैंने कहा—भैया, भाभी कहती हैं कि भोजन तैयार होगया है ।

भैया ने कहा—नहीं, भोजन करने से शाम हो जायगी और फिर इतनी दूर जाना मुश्किल होगा ।

भाभी ने बहुत अनुरोध किया परन्तु उन्होंने न माना। कहा—घर के आदमी हैं । इतने आग्रह की क्या जरूरत और थोड़ी देर बैठना होता तो खाये बिना नहीं जाते।

बड़े भैया चल दिये और उनके पीछे छोटे भैया भी। तब छोटे भैया को रोककर भाभी ने कहा—लालाजी, तुमको तो दूर नहीं जाना है ?

भैया देवधर रुकगये, बोले—नहीं तो । क्यों, मुझसे कुछ काम है ? भाभी ने स्वीकारात्मक सिर हिलाकर जताया—हाँ ।

तो मैं अभी लौटकर आता हूँ—कहकर वे बड़े भैया के पीछे-पीछे चले गये । शायद थोड़ी दूर तक उन्हें भेज कर लौट आये और पूछा—क्या काम है ? मैं आगया।

भाभी—कुछ देर बैठो जब बताऊँगी ।

भैया—तो यह सजा मेरे ही लिए क्यों है ?

भाभी मुस्कराकर बोलीं—सबको एक सजा नहीं दी जा सकती इसीलिए।

अच्छी बात है मैं तैयार हूँ—कहकर वे सुधा के सिरहाने बैठ गये और उसके माथे पर हाथ फेरने लगे। भाभी तब तक जाकर ब्यालू परोस लाईं। आसन और पानी का प्रबंध पहले से ही कर लिया गया था। थाली आसन के सामने रखकर बोलीं—लो, आजाओ।

देवधर—यह खूब। अभी तो मैंने दफ्तर से आकर कपड़े भी नहीं खोले हैं।

भाभी—तो कौन मना करता है? खोल डालो। कहो तो मैं मदद कर दूँ?—उन्हें आगे बढ़ते देख कर देवधर कहने लगे—बस करो, मैं खोले देता हूँ। परन्तु काम का तो अभी तक पता नहीं चला।

सब चल जायगा। आओ, तुम आसन पर तो बैठो।—यह कहकर उन्होंने भैया देवधर को पकड़कर आसन पर बिठा दिया। भोजन कर चुकने पर वे बोले—अब तो बोलो।

अब क्या बताऊँ? इतनी देर तो खाने-पीने में लगा दी। अब पूछते हो—कह कर भाभी मुस्कराईं।

देवधर—तो।

भाभी—तो अब जाने दो!

देवधर—मैं समझ गया, काम का सिर्फ बहाना था।

भाभी—आप तो बड़े समझदार हैं। फिर क्यों न समझ जायेंगे ? पर यह क्या घर जाने की तैयारी हो रही है ? बहू को दो घड़ी न देखने से वह घर से निकाल न देगी ?

देवधर—क्या किया जाय भाभी, वह कुछ ऐसी ही है। अगर मैं बताकर आता तो कुछ चिन्ता न थी।

भैया देवधर चले गये। भाभी मन के उल्लास को मुँह पर बखेरे बैठी थीं। प्रतीत होता था कि उन्होंने अपनी कठिन तपस्या का प्रारंभ कर दिया है। मेरा मन भी आज आनंद से गद्गद् हो रहा था। सुधा के पथ्य के साथ साथ हम लोगों को भी आज मानसिक पथ्य मिल गया था। कई दिनों से बिगड़ा हुआ घर का वातावरण आज शान्ति और संतोष की सासें ले रहा था। मन से एक काँटा-सा निकल गया था। इसी समय मझले भैया घर में आये।

इधर कई दिनों से उनका घर में आना कोई नूतनता और ताजगी का आना न था। कब आये, कब तक रहे और कब चले गये, यह तक मालूम न होने पाता था। उन्होंने तो जैसे पारिवारिक चिन्ताओं से एकदम मुक्ति पा ली हो। आज भी उनका पदार्पण उसी तरह हुआ। यह देखकर मेरा मन आतुर हो रहा था कि दौड़ कर उनको इस नवीन परिवर्तन की सूचना दे दूँ। किन्तु

नहीं, यह करना उस कीमती वस्तु का मूल्य कम करना होता। उसकी यह सहज प्राप्ति कभी उसके पद के अनुकूल न होती।

घर में आते ही मझले भैया ने सुधा को देखा। उसकी रोग-मुक्ति ने उनके मन पर काफी असर डाला। उनका अन्तःकरण आज उत्फुल्ल हो उठा। वे उसके पास बैठकर उसके खोये हुए खिलौनों की चरचा चलाने लगे। अब मुझसे न रहा गया। मैंने अपने हृदय की बात कह ही डाली। मैंने कहा—भैया, किसी की सामर्थ्य न थी जो सुधा को बचा लेता। भाभी के अथक परिश्रम ने यह काम कर दिखाया।

आगे की यह बात प्रबल इच्छा रहते हुए भी मैं मुँह से न निकाल सकी, कि भैया अब तुम उन्हें क्षमा करो। वे अनुताप से गली जा रही हैं।

भाभी सुधा के लिए दूध ला रही थीं, वह शक्कर डालने के बहाने लौटा ले गईं। शायद इस समय वे अपना मुँह छिपा रही थीं। कहीं उनके हृदय का बाँध यों सबके सामने न खुल पड़े।

किसी तरह हो पर बच गई।—इस संक्षेप उत्तर के द्वारा मझले भैया मानों यह कहने जा रहे थे कि जबतक उसका कागद पूरा नहीं होता तब तक उसे कौन मार सकता है?

मैंने फिर जोर देकर कहा—नहीं भैया, सच जानों मैं तो हताश हो चुकी थी। भाभी के हाथ में बड़ा जस है। उनके पुण्य-प्रताप से ही यह सब हो सका।

भैया ने एक हलकी साँस लेकर कहा—ठीक है। ऐसा हकीम भी तो घर में कोई चाहिए।

यह उनका स्पष्ट व्यंग्य था। मेरा जी जल गया। मैंने कहा—नहीं भैया, यह होगा उनके साथ अन्याय।

भैया शायद अबतक यही समझ रहे थे कि मैं भी व्यंग्य में ही बोल रही हूँ। हँसकर बोले—मैं तो सदा अन्याय ही करता हूँ। ऐसी ही आदत पड़ गई है विनू।

भाभी सब कुछ सुनकर भी पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़ी रहीं। यदि भैया मेरे कथन पर विश्वास करके अपनी सम्मति जता देते तो शायद उनका संतोष न होता। वे अपने किये का पूरा प्रायश्चित करने के लिए कटिबद्ध थीं। इससे भी बड़ा व्यंग्य, इससे भी बड़ा प्रहार, सहने के लिए जैसे वे तैयार थीं।

उन्होंने मुँह पर बिना किसी प्रकार का विकार लाये सुधा को उठाया। गोद में बिठाकर उसे दूध पिलाने लगीं।

यह दृश्य देखकर भैया को शायद मेरे कथन पर कुछ भरोसा हो चला था। उनके थके मुंह पर एक नया भाव खेलने लगा। घर के वातावरण में नया स्पन्दन शुरू हो गया।

[७]

मझली भाभी का ख्याल था कि जिस जोर जबरदस्ती और अधिकार से उन्होंने सुधा को रोक लिया था, उसीसे जब चाहें उसे वापस भी कर दे सकती हैं, पर जब सरन ने आकर छोटी भाभी का उत्तर सुना दिया कि उनका जी ठीक नहीं है । सुधा की साल-सँभाल कौन करेगा, तो वे स्तब्ध रह गईं ।

स्तब्ध मैं भी रह गई; क्योंकि भाभी ने कब सरन को भेजा और उससे क्या कहलाया यह मुझे भी मालूम न था । मैंने कहा—ऐसी क्या पड़ी थी भाभी, जो तुम सुधा को भेज रही हो ?

भाभी ने कोई उत्तर नहीं दिया । सरन से बोलीं–तुम एक बार फिर उधर चली जाना, पर नहीं, ठहरो—अभी तुम जाओ । कल कहूँगी ।

सरन चली गई । मैंने भाभी से कहा—क्या कर रही हो भाभी ? सुधा को बुलाकर तुमने कौनसा बुरा किया ?

आखिर एक-न-एक दिन तो वह अपने माँ-बाप के पास आती ही।

भाभी—कुछ इसलिए नहीं भेज रही हूँ।

मैं—किसी कारण हो पर अब भेजना-न-भेजना बराबर है पीछे छोटी भाभी को बुरा लगेगा।

मेरे इतना कह देने पर भी उसी दिन सरन के साथ सुधा भेजदी गई और वह लौट भी आई। छोटी भाभी की निष्ठुरता पर मुझे क्रोध आया। मैं बड़ी देर तक उन्हें ज्यों-त्यों कोसती रही। मझली भाभी मालूम पड़ता है सुधा को भेजकर सशंक बैठी परिणाम की प्रतीक्षा कर रही थीं। जब वह लौट आई तो उनका मुंह छोटा सा होगया। इतनी निष्प्रभ वे कभी न हुई थीं।

उन्होंने पूछा—छोटी बहू बीमार है, तो हमें क्यों नहीं कहलाया? क्या हम इतने गैर हैं?

सरन—नहीं, कुछ ऐसी ही हैं।

मझली भाभी की एक ही बात ने मुझे उनकी प्रशंसिका बना दिया था। मैं अब हर एक पहलू से उनके बड़प्पन को बढ़ाकर देखती थी। उनके अपमान को सहन करना मेरे लिए कठिन होगया। मैंने कहा—छोटी भाभी बड़ी पत्थर हैं। एकबार कड़क कर फिर उनमें लोच नहीं आता। ऐसा भी मान क्या? जब ये बड़ी होकर इतनी झुक रही हैं तो उन्हें यों न करना चाहिए था।

मैंने सरन से कहा—तुम्हें एक बार मेरे साथ और चलना पड़ेगा। मैं भी तो देख आऊँ कैसी बीमार हैं।

मझली भाभी—मैं भी चलूँ न।

सरन ने सुझाया—बच्ची सुधा बीमारी से उठी है। आते-जाते थक गई है। उसे फिर ले चलना क्या ठीक होगा ?

भाभी—तो बीबीरानी को लेजाकर दिखा ले आओ। न होगा मैं संध्या समय चली जाऊँगी।

मैं रास्ते भर तो यही सोचती गई कि छोटी भाभी ने आज उचित नहीं किया। उन्हें आज जी भरकर डाटूँगी। पर घर पहुँच कर देखा तो मैं भयभीत होगई। इतनी बड़ी बीमारी क्या मैंने सोची थी ? एक दम चारपाई से मिल गई छोटी भाभी ! कहाँ था उनका वह रूप ? कहाँ थी उनकी वह हँसी ! क्षीण, दुर्बल, एकाकी ! दीन कुररी सी पड़ी थीं।

मैं जाकर खड़ी होगई। अनायास मेरे मुंह से निकल गया—ऐं यह क्या, सरन ! तुमने क्या यह सब मुझे बताया था ?—और भाभी से बड़े आवेश में आकर मैंने कहा—छोटी भाभी, तुम कैसी हो ! शरीर का यह हाल कर लिया और—

छोटी भाभी फीकी हँसी हँस दीं और बोलीं—आओ बैठो। सरन बेचारी को दोष न दो। मैंने ही उसे मना

कर दिया था। सोचा था, नाहक चिन्तित हो उठेंगी। वही हुआ।

मैं—बहुत अच्छा सोचती हो! भगवान् तुम्हारी जैसी सद्‌बुद्धि सभी को दे दें तो सेवा-सुश्रूषा का बहुत सा काम हलका होजाय।

भैया देवधर दूसरे कमरे में दवाई तैयार कर रहे थे, लेकर आ पहुँचे। मैंने कहा—भैया, तुम भी इनके सिखाने में आगये। खबर तक न की। ये स्त्री थोड़े ही हैं। पत्थर हैं, निरी पत्थर!

देवधर—पत्थर नहीं फौलाद हैं। न हकीम की बात मानेंगी न डाक्टर की। इतने दिन होगये आज, खुशामद कर कर हार गया हूँ पर मजाल क्या जोएक खुराक भी पी हो।

मैं-तो खबर तो की होती।

देवधर—पागल हुई हो विनू। खबर कैसे करता?

मैं—कहा न कि मनाकर रक्खा था? पर इस तरह चुपचाप दुनियाँ से चल देना क्या सहज है? कोई किसी को खबर न करे, पर भगवान क्या इतने लापरवाह हैं अच्छा लाओ, दवाई मुझे दो।

मैंने भैया के हाथ से प्याला ले लिया। भाभी धीरे से बोलीं—रह जाओ। मैं ऐसी बीमार थोड़े हीहूँ जो दवाई पीकर मुंह को कडुआ करूँ।

मैंने उत्तर दिया—दवाई पीने से मुंह कड़ुए होते हैं, तो बोलो मिश्री घोल कर पिलाऊँ ? अभी तक जबान इतनी चटोरी है, छिः !

मैंने प्याला ले जाकर होठों पर लगा दिया। वे हाथ से मेरा हाथ पकड़ते हुए बोलीं - न मानोगी ?

नहीं— मैंने उत्तर दिया।

"तुम्हें मेरी कसम।"

"और तुम्हें भी मेरी कसम जो एक ही घूँट में इसे न पी गई।"

"तुम न मानोगी।--अच्छा लाओ।"

मैंने हाथ के इशारे से उन्हें उठाया और दवाई पिलादी। दवाई पीकर बोलीं---अब तो खुश हो ?

मैंने होंठ बिचकाकर कहा - तो मेरे ऊपर एहसान किया है क्या ? एहसान अपने पर कर रही हो, एहसान उन पर कर रही हो— मैंने उँगली दिखाकर भैया देवधर को बता दिया।

भाभी हँसकर---तो आज लड़ने आई हो ?

मैं—जरूर।

भाभी—तो दो-चार खुराकें पिलाकर मुझे लड़ने लायक बना लो। मैं तुम्हारी चुनौती स्वीकार करती हूँ।

मैंने कहा—अच्छी बात है। वही करूँगी।

भैया देवधर की ओर घूमकर मैंने पूछा - भैया, ये बीमार कब से हैं ? अभी उस दिन घर गई थीं, जब तो ठीक थीं।

भैया—बस, घर से आई हैं उसी दिन से कुछ उदास हैं। सुधा को भाभी ने रख लिया, तब से तो कई दिन तक खाना पीना ही छोड़ रक्खा।

भाभी—रहने भी दो। क्या बीमारी ये सब कारण लेकर आती है? तुमने तो एक ही मर्ज पकड़ रक्खा है। सुधा, सुधा जब देखो तब सुधा। यह भी देखते जा रहे हो कि मैं सुधा के बिना भी जी रही हूँ। अगर न जी सकती तो अब तक कभी की मर जाती। उस चुड़ैल को क्या मैं अब रख सकती हूँ दिन भर उपद्रव करे। ऐसे जी के जंजाल को मैं क्यों चाहने लगी? ऐसी ही वह होती तो जीजी (बड़ी भाभी) के साथ न निभ जाती, जिनकी गोद में देकर माँ मर गई थी। मैंने तो देखा था बिना माँ की लड़की है। अब वह बात भी नहीं रही। उसकी नाँ भी आगई। वह उसे चाहती भी है, तो मैं क्यों रोकती? ऐसी लड़की के चले जाने पर मुझे दुख क्यों होता? मैंने सच पूछो तो उसी दिन से अपने को निर्द्वन्द और निश्चिंत समझ पाया है। लेकिन आज न जाने क्यों—

मैंने बीच ही में रोककर कहा—सुधा को उन्होंने फिर भेजा था?

भाभी—हाँ, न जाने क्यों फिर भेजा था? जिसे इतने आग्रह और अधिकार-प्रयोग के साथ उस दिन रख लिया था, उसे तीन ही हफ्ते में फिर लौटाने लगीं। क्या बच्चों

का रखना इतना सरल है ? एक छोटी-सी बीमारी में सब के हौसले पूरे होगये। अभी पूरी तरह पथ्य भी तो उसे नहीं मिल पाया। मुझे तो उसकी धुले कपड़े सी सूरत देखकर रोना आगया पर उस माँ के हृदय में इतना भी न आया कि उसे माँ-बाप के लाड़-दुलार से वंचित करके चाची के पास भेजे दे रही हैं।

मैं स्तब्ध उनका मुंह देख रही थी। सरन अब तक तो बैठी थी परन्तु अब किसी आवश्यक काम से चल दी। भाभी ने कहना जारी रक्खा—एक बार तो जी में आया था कि उसे रख लूँ। परन्तु मैं क्यों रख लेती ? उसकी माँ ही क्यों नहीं रखती ? इसीलिए मैंने लौटा दिया। कहो मैंने कैसा किया ?

मैं—अच्छा ही किया।

भाभी—अच्छा ही किया ? क्यों ?

मैं—और यदि रख लेतीं तो भी अच्छा ही करतीं।

भाभी—तो कहो मैंने बुरा किया, पर इसमें क्या बुरा किया?

मैं—नहीं बुरा तो कुछ नहीं किया, पर यदि तुम इतना जानतीं :

भाभी—मैं खूब जानती हूँ। भला मैं क्या नहीं जानती ?

मैं—मैं यह नहीं कहती किन्तु सुधा के आजाने से तुम्हारी मानसिक व्यथा कम हो जाती फिर मझली भाभी भी तो अब बदल गई हैं। सुधा को उस प्रकार

प्राप्त करके उन्होंने क्या नहीं खो दिया। उसकी कीमत से वे उस अमूल्य निधि का परिवर्तन क्यों न चाहेंगी। सुधा को भेजना क्या उनका पश्चात्ताप नहीं हो सकता?

भाभी—ऐसा हो तो भी मुझे सुधा की दरकार नहीं।

मैं—क्यों?

भाभी—अपना जी।

मैं—परन्तु क्यों?

भाभी—मैं कितनी बार तुम्हें बता चुकी हूँ रानी! कि अहिल्या नामकरण करने में मेरे माता-पिता का और कोई उद्देश्य न भी रहा हो, परन्तु स्वभाव की कठोरता तो था ही। माँ ने स्वयं एक दिन मुझे कहा था कि पत्थर की लीक की तरह अटल मेरी जिद पर रीझ और खीझ कर उन्होंने पहली बार मुझे इस नाम से पुकारा था। तभी से सब मेरे असली नाम को भूल गये। मैं भी उस भूले हुए नाम को याद रखना नहीं चाहती। जिसका मेरे स्वभाव के साथ कोई साम्य नहीं उसे याद रखने में क्या फायदा? मैं उसी अपने स्वभाव से विवश हूँ।

मैं—पर अपने स्वार्थ के लिए पत्थर भी द्रवित होता है भाभी। कठोरता को भी यह सोचकर तुम्हें मर्यादित करना चाहिए।

मेरा इसमें इतना ही स्वार्थ है कि मानसिक बेकली जो थोड़ी-बहुत हो रही है, शांत हो जाय—भाभी ने बहुत

स्थिरता से कहा।

मैं—इतना भी क्या थोड़ा है?

अधिक नहीं, पर अपनी कठिनाइयों का स्वागत करना क्या कम है? भरे-पूरे की इच्छा सभी करते हैं। वह सुहावनी है। रिक्तता को गले लगाना निर्भय हो जाना है। सुधा सुधा वेचारी क्या है? जीवन के एक कोने को भी तो वह नहीं भर पाई थी। उसे निकाल कर तो मैं रिक्तता का अनुभव भी नहीं कर पाई हूँ—कहते कहते उनका कंठ भर आया। आगे कहने की सामर्थ्य उनमें न रही।

मैंने कहा—देखो, तुम्हारे माथे पर पसीना आगया है। अपने पर रहम करो। अत्याचार मत करो। मैं तुम्हें देखने और हो सके तो कुछ दवादारू करने आई हूँ। व्याख्यान सुनने नहीं।

भाभी—मैं व्याख्यान दे रही हूँ, क्यों?

मैं—और नहीं तो क्या कर रही हो? अकारण बीमारी को बुलाकर फिर उससे लड़ते-लड़ते अशक्त होकर अब मुझसे व्यर्थ बहस में प्रवृत्त हो रही हो।

अकारण—उँहुं—कहकर और थोड़ा हँस कर वे मौन हो गईं। मौन के साथ आँखों में थोड़ी-सी बूँदें छलक आईं। कंठ कुछ भारी हो गया। मैं निस्तब्ध बैठी रह गई। जीभ नहीं खुल सकी कि कुछ कहूँ। मेरी खिन्नता को थोड़ी देर बाद हटाने की चेष्टा करती हुई वे बोलीं—मुझे तो तुमने

आकर बचा ही लिया है। अब तनिक अपने भैया की फिक्र तो लो। दो दिन से जो-सो खाकर रह जाते हैं। रोटी मैं कर नहीं सकती और बजार जाकर ये खा नहीं आते।

मैंने कहा—मैं भी कैसी हूँ जो आकर इतनी बीमारी में भी तुमसे लंकाकांड में प्रवृत्त हो गई पर भैया की खबर भी न ली। खैर, अब अभी बनाये लेती हूँ।

यह कहकर मैं उठ आई। चौका ठीक किया। सामान निकाला और रसोई करने में लगी। भैया देवधर भी लौटकर आये तो बोले—विनू तू तो रसाईदारिन बन रही है?

मैं—और तुम भूखे फिरते-फिरते भी किसी से यह नहीं कह पाये कि खाने-पीने का प्रबंध कर दिया जाय। आखिर मुझसे तो नहीं रहा जा सकता।

भैया—अच्छा यही सही।

भैया चले गये। मैं रसोईघर में दाल चढ़ाकर भाभी के पास जा बैठी और साग कतरने लगी। भाभी बोलीं—इस बार बड़ा अच्छा अवसर था। मैं मर जाती।

मैं—चलो, रहने दो।

भाभी—पर न जाने क्यों मुझे इस जीवन से इतना मोह हो रहा है। मैं सोचने लगती हूँ, तुम्हारे भैया के लिए।—मैं कैसी मूर्खा हूँ—हूँ न? भला मैं यह नहीं सोचती, कि सचमुच ही मैं यदि न रहूँ तो क्या इन्हें तकलीफ हो। एक जाती हैं, दूसरी आ जाती है। इसमें

तकलीफ काहे की ?

मैं—आज तुम्हें ज्ञान बहुत हो रहा है भाभी । मैं जाती हूँ । मेरी दाल जली जाती है ।

मैं उठकर चली गई ।

[८]

स्थिति बड़ी खराब हो गई है। बड़े भैया की नौकरी छूट गई है। छोटी भाभी का स्वास्थ्य मेरे लाख यत्न करने पर भी आगे नहीं बढ़ा। बल्कि दशा क्षीणतर होती जा रही है। मझले भैया के पैर में कुछ तकलीफ हो गई है। उधर मेरे गौने के लिए ताकीद हो रही है। मैं बारबार सोचती हूँ; एक घर के तीन घर हो जाने से जो असुविधा बढ़ गई है वहकैसे दूर हो? परन्तु मैं क्या कर सकती हूँ?

छोटी भाभी को सुधा के नाम से चिढ़ हो गई है। मैं कभी बात चलाती हूँ तो उन्हें सहन नहीं होती। शायद सुधा का नाम भी वे अपने कानों में पड़ने देना नहीं चाहती। डाक्टर आता है और देख जाता है। दवाई देता है। खाती हैं। पर मेरा जी न जानें क्यों यही कहता है कि एक बार

सुधा को लाकर उनकी गोद में रख देने से उनके प्राण रह जायँगे।

मुझे आज आठ दिन यहाँ पूरे हो जायेंगे। मेरे गौने की तारीख टल गई है, पर भाभी के दिन जैसे पूरे हो रहे हैं। डाक्टर भी इधर कुछ उद्विग्न से हो रहे हैं। आज मझले भैया ने छोटे भैया को बुलाया था। उनसे मालूम हुआ कि उन्होंने कहा है कि बड़े भैया वापस घर आजायँ। छोटे भैया उन्हें कहने गये भी थे, और बड़े भैया ने अपनी स्वीकृति भी दे दी थी परन्तु बड़ी भाभी तैयार न हुईं। उन्होंने कहा बताते हैं कि वे जीते जी घर में पैर न रक्खेंगी।

मेरी आँखों के सामने मझली भाभी की निष्कलुष मूर्ति है, परन्तु तो भी आज न जाने क्यों मेरा अन्तःकरण आज उन्हें बराबर कोस रहा है। बड़ी भाभी की चिर परिचित कर्कश मूर्ति आज मेरी श्रद्धा को अनायास अपनी ओर खींच रही है।

संध्या के चार बजे हैं। मैं छोटी भाभी को दवाई देने का मन कर ही रही थी कि सरन दौड़ी हुई आती है। सरन—हाय, गजब हो गया बिटियारानी! मझलीबहू—

मैं घबड़ाकर में बोल उठी—क्या, क्या हुआ सरन!

सरन—मझली बहू कुए में गिर पड़ी। चलो, जल्दी चलो। छोटे बाबू कहाँ हैं?

भैया देवधर भीतर ही थे। यह सुनकर वे भी निकल आये। मेरे हाथ से शीशी छूटकर चूर-चूर हो गई। मैं भैया देवधर के साथ बेतहाशा भागी। छोटी भाभी को शायद झपकी आगई थी और वे पूरी बात सुन न सकी थीं। इसीलिए वे मुझे पुकारती रह गईं।

मैं घर पहुँची। भैया देवधर मुझ से पहले ही पहुँच गये थे। छुन्ना कहार आकर कुए में उत्तर चुका था। दो तीन मुहल्ले के लोग पहुँच गये थे और वे भाभी को निकाल रहे थे। बड़ी कठिनाई से चार-चार अंगुल करके रस्सी खींची जा रही थी। मेरा शरीर काँप रहा था और हृदय धक धक कर रहा था। थोड़ी देर में भाभी का चेहरा, फिर शरीर, कुएँ से बाहर निकाला गया। उनके मुंह से 'ऊँह-ऊँह' जैसी कराहने की आवाज निकल रही थी, परन्तु शायद शरीर का भान उन्हें नहीं था।

कुएँ के पास ही बिछौने पर उन्हें लिटा दिया गया और उपचार किया जाने लगा। छोटे भैया डाक्टर के लिए दौड़ गये। डाक्टर आये। परीक्षा की, और न जाने बड़ी देर तक क्या समझाते रहे। फिर चले गये।

थोड़ी देर में एक नर्स आवश्यक औषधियाँ लेकर आई। इस बीच मझले भैया ने भैया देवधर को भेजा कि बड़े भैया को खबर कर दें। एक डेढ़ घंटे में बड़े भैया आ पहुँचे। उनके पीछे बड़ी भाभी भी यह कहते-

कहते घुसीं—हाय! जो कहीं मैं इनकार न करती। उसी समय चली आती।—परन्तु मेरी मति पर पत्थर पड़ गये थे।

मैं अब तक भय से बराबर काँप रही थी। अब भाभी को देखते ही मुझे रुलाई आ गई और मैं सिसक सिसक कर रो पड़ी।

भाभी—रोने से क्या होगा? आओ कुछ उद्योग करें।

भाभी के साथ साथ मैं मझली भाभी के शरीर के उस ओर बैठ गई जिधर उन्होंने इशारा किया। नर्स ने कहा—मालूम पड़ता है चोट बहुत लगी है। अभी तक जरा भी उन्नति नहीं हुई है।

मैं—लेकिन मेम साहब! अच्छी तो हो जायँगी?

नर्स—कह नहीं सकती। आशा बहुत कम है।

किसी तरह के उपचार में कमी नहीं रक्खी गई। लेकिन भाभी को होश नहीं हुआ। रात के करीब एक बजे उनका चोला छूट गया।

इतनी जल्दी इतना अनर्थ हो जायेगा यह कौन जानता था! बड़ी भाभी कितनी ही विषाक्त क्यों न हों पर आज उनका मन उन्हें बारबार धिक्कार रहा था। वह धिक्कार बिना बोले ही उनके चेहरे से झलकती थी। उसे वे छिपाने के लिए भी व्यग्र नहीं दिखाई देती थीं। प्रतीत होता था कि वे अपने दोष को समझ रही हैं और उस

आरोप से अपनी रक्षा करना नहीं चाहतीं। रात्रि के इस अंधकार में, जब कि मझली भाभी का शव दालान में सुहाग की साड़ी ओढ़े पड़ा था। बड़ी भाभी मुझे सबसे श्रद्धास्पद लग रही थीं।

रामू और सुधा एक चारपाई पर सोये थे। लेकिन हम सब के एक साथ रो पड़ने से उनकी नींद खुल गई थी और वे भी रोने लगे थे। उनके मन में न जानें कौन सी भावना उमड़ पड़ी थी? उसे प्रगट किये वगैर ही वे थोड़ी देर में अवसर की भीषणता का आभास पा गये और दोनों गले लगकर पहले जैसे ही सो गये। मैं बैठी उन्हीं के प्यार भरे आलिंगन को देख रही थी और उनकी निष्कलुष चित्तवृत्ति का मनुष्य के आचरण से मेलमिला रही थी।

बड़े भैया शान्तिरूप, स्थिर किन्तु कुछ अनमने से बैठे थे। उनके चेहरे पर विकार के चिन्ह इतने अस्पष्ट थे कि मालूम पड़ता था मानों इस सद्य-प्रलय ने उनके अन्तःकरण का स्पर्श ही न किया हो। मुझे बचपन से अब तक के अनेक दुर्दिन एवं महोत्सवों की याद है। बड़े भैया को मैं सदा आग और पानी के समय इसी प्रकार तटस्थमुद्रा में देखती हूँ। उन्हें जैसे हाड़-माँस का मोह ही न हो।

उनके समीप ही भैया श्रीधर सिर नीचा किए बैठे थे।

इतना नीचा कर लेने पर भी हृदय का हाहाकार उनके चेहरे पर स्पष्ट अंकित था। उस महान व्यथा का कितना अंश उन्होंने आँसुओं में धो डाला है यह उनके सवंथ में किसी से पूछने की जरूरत नहीं थी। इतने दीन और करुण तो वे उस दिन भी न हुए थे जब बच्ची सुधा को छोड़कर उसकी माँ चल बसी थी। बारबार शव की ओर देखकर वे जब सांस लेते थे तो कोई अव्यक्त कहानी अपने आप को कह डालने के लिए आतुर जान पड़ती थी।

देवधर भैया से बुलवाकर मैंने सरन को छोटी भाभी के पास भेज दिया था और उसे समझा दिया था कि वह उन्हें कुछ बताए नहीं। मैं नहीं चाहती थी कि इस दुःसंवाद को वे इतनी जल्दी सुन लें। किन्तु जान पड़ता है वे न मानीं। सरन भी उनके सामने अधिक देर तक उसे छिपा न सकी। आखिर उसे कुछ न कुछ बताना ही पड़ा और इसी पर वे नाना प्रकार के अनुमान करने लगीं। बारबार उठ उठकर बैठ जाती थीं और खड़े होने की चेष्टा करती थीं। बेचारी सरन डर गई। उससे वे सँभल न सकीं। तब आधीरात में वह दौड़कर आई और खबर दी। हम में से कोई इस नये समाचार को सुनने को तैयार न था। यह सुनकर बड़े भैया ने देवधर को और मुझे भेजने के लिए क्रमशः हम दोनों की ओर देखा।

उसी समय हम गये। भाभी ने मुझे देखते ही पूछा—क्यों, क्या हुआ ?

मैंने कहा—लेटी रहो। जो हुआ है सो तो हुआ ही।

भाभी—मुझे बताओगी नहीं ? न बताओ।

मैं—व्यर्थ की बातों को तुम्हारी इस कमजोरी के समय कहने से तुम्हें परेशानी में ही डालना है।

भाभी—तो क्या तुम्हारे न कहने से ही इतनी बड़ी बात छिप जायगी ? इतनी भारी दुर्घटना का हाहाकार तो मैं देखती हूँ सारी दुनियाँ में भर गया है।

मैं—तो तुम तो सुन ही चुकी हो ?

भाभी—मैं सुन चुकी हूँ, और खुश हो चुकी हूँ, क्यों ? नहीं, भूलती हो। मैं सुनकर रो चुकी हूँ।-कितनी आतुरता से सब पर अधिकार करती आई थीं वे ? घर गृहस्थी को, चीज-वस्तु को, स्नेही-संबंधियों को जिस तत्परता से उन्होंने अपने साथ लपेट लिया था, अपनी कही जाने वाली हर एक चीज पर अधिकार जमा लिया था, उस सब को उसी तत्परता से छोड़ कर चली गई, एक क्षण में। मोह भी कैसा, और त्याग भी कैसा !

कहकर भाभी रोने लगीं। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा वह चली। मैंने कहा—देह के साथ ही मोह होता है। पर देह की क्षणभंगुरता जानते हुए भी क्या कोई उस मोह को छोड़ सकता है ?

भैया—दो-एक जगह कैफियत देने लग गया था।

मैं—ये भाभी क्या कह रही हैं। सुनो तो आकर जरा।

भैया—क्या कहती हैं ?

मैं—कहती हैं, वहाँ चलेंगी।

भैया पास आकर बोले—क्यों, चलोगी ? चल भी सकोगी ?—और यह दवाई तो ज्यों की त्यों रक्खी है। बिलकुल नहीं पी गई है।

भाभी—तुम्हें दवाई की पड़ी है। मैं कहती हूँ मुझे वहाँ ले चलो।

भैया—मैं कब इनकार करता हूँ। उठो, चलो।

भाभी उठकर बैठ गईं। मैं भैया से बोली—क्या करते हो भैया। इस हालत में इतनी रात को ये जायँगी कैसे ?

भैया—पर जब मुंह से निकल गया है तब ये बगैर एक बार जाये मानेंगी कब ?

मैं—लेकिन सबेरा नहीं होगा क्या ? थोड़ी-सी तो रात रही है। अभी ले चलना तो ठीक नहीं है।

भैया मेरी बात को अनसुनी करके भाभी से बोले—चलती क्यों नहीं ? उठो, बिस्तर से उतरो।

तुम लोगों की इच्छा नहीं है। नहीं जाऊँगी।—कहकर भाभी लेट गईं।

मैं—न जाने के लिए मैं नहीं कहती। मैं तो कहती हूँ—तुम थोड़ा आराम करलो। सबेरे चलेंगे।

भाभी—अच्छी बात है।

मैं—लो, यह दवाई तो पी लो। बहुत बोलने और उठकर बैठने से तुम्हारे माथे पर पसीना झलक आया है।

भाभी ने चुपचाप दवाई लेकर पी ली। कुछ उत्तर नहीं दिया।

मैं बैठकर उनके माथे पर हाथ फेरने लगी। मालूम पड़ता है मेरे हाथ की कोमल थपकियों से उनकी आँखें झँप गईं और उन्हें नींद आगई।

भाभी को झपकते देखकर भैया देवधर ने मुझ से कहा—मैं तो वहीं चलता हूँ, विनू! तुम चाहो तो अब द्वार बंद करके लेट रहो। मैं पौ फटने से पहले ही एक बार आजाऊँगा।

मैं उठी और भैया के निकल जाने पर द्वार बंद कर लिया। आँगन में एक छोटी-सी चारपाई पड़ी थी। हलके हाथों उसी को उठा लाई और बिछाकर भाभी के पास ही लेट गई। परन्तु आँखों में नींद का नाम न था। देर तक पड़ी रहने पर मैंने लैम्प की बत्ती कम करदी और मुँह ढक लिया। अँधेरा होगया, पर उस अँधेरे में भी जैसे सब कुछ स्पष्ट था। सारी ताजी घटनाएँ एक एक करके आँखों के सामने आ-जा रही थीं। मेरे मन की

इस समय विचित्र दशा थी। कभी रोमांच और कभी भय का संचार हो उठता था।

इसी बीच किसी समय मेरी आँख लग गई और मैं स्वप्नों की दुनियाँ में जा पहुँची। यथार्थ जगत में कुछ देर पहले जिसे मृत्युशय्या पर पड़ा देख चुकी थी। जिस के लिए चिल्ला चिल्लाकर रो चुकी थी, और शोक के आँसू गिरा चुकी थी। स्वप्न का दुनियाँ में उसका बाल बांका न हुआ था। वह ज्यों की त्यों हँसती-खेलती, खाती-पीती, गाती और मौज उड़ाती थी। यह सब देखकर मेरे जी में आता है, कि इस प्रत्यक्ष संसार से तो स्वप्न-जगत् ही भला है।

मैंने देखा कि भैया घर में नहीं हैं। भाभी अकेली बैठी सुधा के केश गूँथ रही हैं। मैं कहीं से पहुँच गई तो उन्होंने मुझे पकड़कर अपने पास बिठा लिया। मैंने पूछा—भाभी, भैया कहाँ हैं? दो एक कमीज और कुरतों का कपड़ा लाने को कहते थे। ले आते तो मैं सी देती।

भाभी शायद मुझे बताने को ही बैठी थीं। मुझे देखते ही बोलीं—तुम्हारे भैया की किसी बात को जानने का मुझे अधिकार नहीं रहा है। मैंने अपनी-अपनी में उनका विश्वास गँवा दिया है।

मैं—ऐसा क्यों कहती हो? भैया आखिर तुम्हारे ही हैं।

भाभी—अगर ऐसा हो सकता ।—फिर थोड़ी देर में ठंडी सांस खींच कर बोलीं—उसमें उनका दोष नहीं है। रत्ती भर नहीं। तुम यह न समझो कि बहन होने से तुम्हारे सामने मैं उनकी प्रशंसा करूँगी। मैं सच कहती हूँ। वे गंभीर समुद्र हैं। खारे होकर भी शीतल हैं. पर मैं क्या करूँ ?

मैं—करोगी क्या ? उन्हीं गुणों के कारण उन्हें छोड़ दोगी ?

भाभी—यही तो सोच है, क्या करूँ ? पर उनका विश्वास खोकर मैं घर में भला रह भी सकूँगी ?

मैं—इस अपने मन के पाप को निकाल फेंको, भाभी। भैया यह सब जी में रखनेवाले आदमी नहीं हैं !

भाभी—वे ऐसे नहीं हैं, पर मैंने अपने कामों से ऐसी धारणा बना लेने के लिए उन्हें विवश कर दिया है।

मैं—इन मामूली बातों को इतना बढ़ाकर क्यों सोचती हो ?

भाभी—मैं ठीक सोचती हूँ। ये मामूली-सी समझ पड़ने वाली बातें बड़ा असर करती हैं। बड़ी जीजी के साथ उस दिन उस तरह से व्योहार करके मैंने सोचा था, मैं कुछ नहीं कर रही हूँ। अपने भविष्य की चिन्ता करके कोई नई बात नहीं करता। मुझे उस समय ऐसा ही लगा था कि मैं अपने मन के भाव को बता दूँ,

पर पीछे उसके परिणाम को देखकर मुझे पता चला कि मैंने थोड़े की रक्षा के लिए बहुत को गँवा दिया है। वह श्रीगणेश था। उन्होंने मुझे बहुत समझाया। आगे के लिए सचेत किया, पर मैंने कब सुना ? तब मुझे उनके उपदेशों की परवाह न थी।

मैं—पहले-पहल ऐसा ही होता है।

वे कहती गईं—इसके बाद और कई बातें हुईं, तब भी मैंने उनकी बात को नहीं माना। न मानने के लिए नहीं, पर इसलिए कि मैं अपने को ठीक समझती थी। तभी छोटी बहू से सुधा को छीनकर मैं एक और कांड कर बैठी।

मैं—पर इन सब बातों से मतलब क्या है ?

वे—यही कि मैं अब कहाँ हूँ ? कहीं तो नहीं। घर में बैठी भी मैं घर के बाहर हूँ। यह दशा कैसे चलेगी ?

मैं—मेरा ख्याल है, यह अन्दाज गलत है भाभी।

है—क्यों, कैसे ? क्या मैं बिना आधार के कुछ कहती हूँ ?

मैं—सुनो इतना सब ख्याल रखने का आदमियों को मौका कब रहता है ? अपने कामकाजी जीवन में जो बात जहाँ पर जैसी आती जाती है उसको वहीं पर वैसी ही निपटाते जाते हैं। वे हम लोगों की तरह बचाकर, ऊहापोह के लिए, बहुत थोड़ा रखते हैं। ऐसा करने

लगें तो एक ढेर लग जाय, और जीवन का व्यतीत करना कठिन होजाय । इसलिए मैं कहती हूँ, यह सब निराधार है । तुम अपने को अलग न हटाओ । उनके साथ मिलाये रहो । जो अलगाव हुआ भी है वह दूर हो जायगा । वे समझ लेंगे कि तुमने अपने को देश-काल के अनुसार बना लिया है, तो बस सब ठीक हो जायगा । यह कहावत झूठ नहीं है, कि 'इन पुरुषों को न रीझते देर लगती है न खीझते।'

वे बोलीं—तुम जरा मेरे पास बैठ जाओ और यह बता दो ।—अगर तुम्हारे देवता रूठ जायें तो ?

मैं-मैं उन्हें मनाऊँगी ।

वे—मनाने पर भी न मानें तो ?

मैं—क्यों न मानेंगे ? उनके मन की करूँगी तब भी न मानेंगे ?

वे—पर जो तीर हाथ से छूट गया है उसे क्यों कर लाया जा सकता है ?

मैं—न सही, अगर हम उन्हें अपनी आत्मशुद्धि का विश्वास करा सकें ।

वे—यही मैं नहीं कर सकी ।—सब कुछ करके भी मैं उन्हें विश्वास न करा सकी ।—एक ही दिन में मैं उनके जितने समीप पहुँच गई थी, पीछे उतनी ही दूर जा पड़ी लेकिन इस से भी मुझे एक लाभ हुआ । मैं यह जान

सकी हूँ कि मेरा अब कर्तव्य क्या है।

मैं—हाँ, क्या है ? बताओ, जरा मैं भी तो सुनूँ।

इसी समय मेरे समीप लेटी हुई छोटी भाभी शायद जाग पड़ीं और मुझे पुकारा—आखिर, कब तक सोती रहोगी ?

मेरी आँख खुल गई, और मैं मझली भाभी के उत्तर को सुनने से वंचित रह गई।—ऐसा मुझे ज्यों ही भास हुआ त्यों ही मेरे जी में उठा कि आखिर उन्होंने अपना कर्तव्य ही तो संपन्न कर डाला है !

यह सोचकर और इसके साथ ही मझले भैया की अनभिज्ञता पर दृक्पात करके मैं व्यस्त हो उठी। उधर छोटी भाभी मेरे मौन से व्यथित होकर स्वयं उठ खड़ी होने की चेष्टा कर रही थीं कि उनका पैर लड़खड़ा गया। पानी का गिलास जो गिरा तो मेरा ध्यान भंग हुए बिना न रहा। मैं उठकर खड़ी हो गई और दोनों हाथों से उन्हें सँभाल लिया।

[९]

इन थोड़े से दिनों में कितनी दुनियाँ घूम गई? एक घर के तीन घर हुए। कलह और मनोमालिन्य बढ़े। हृदयों की खाई चौड़ी हुई। जीवन में कडुआपन तैरता हुआ दिखाई दिया।— ब्याह रचाये गये। फिर चिताएँ चुनी गईं। हमारे मझले भैया जो भोगी और सन्यासी दोनों एक साथ थे, वे अब भी उसी तरह हैं। जीवन में परिवर्तन की लहर आई थी, वह वसन्त की हवा के झोंके की तरह आकर चली गई। वे अब भी पहले जैसे अपने काम पर जाते हैं। पैदा करके लाते हैं लाकर बड़ी भाभी के हाथ पर रख देते हैं। क्या कैसे खर्च होता है, इसके पूछने की न कभी उन्होंने चिन्ता की थी न अब करते हैं।

बड़े भैया ने उधर बुढ़ापे में नौकरी का अनुभव कर जरूर लिया है। उस अनुभव को घर वापस आकर

भी वे थोड़ा-बहुत जारी रख रहे हैं। परन्तु इनमें और मझले भैया में बहुत अन्तर हो गया है। ये प्रसन्न रहते हैं, वे चिन्तित। इन्हें सवेरे से शाम तक काम से विराम नहीं। कभी बैठकर हुक्का पीते हैं। कभी मकान की मरम्मत की तरफ ध्यान देते हैं। कभी आगत-स्वागत में लगते हैं। कभी कोई गीता-रामायण उठा कर भगवद्भजन कर लेते हैं। बाकी समय अपने काम पर चले जाते हैं। पैर से सिर तक आज कल ये कामकाजी आदमी बन गये हैं। जिन्होंने पहले देखा था वे उनकी कर्तव्यशीलता पर विश्वास नहीं करते। काम की इस भीड़भाड़ में चाहे किसी को दिखाई न दे पर मुझे साफ झलकता है कि वे अपने हृदय के किसी मर्मस्थान पर लगी हुई चोट को भुलाने का यत्न कर रहे हैं। केवल भैया देवधर सारे घर भर में एक सद्गृहस्थ हैं। सही दिमाग और सही मन से वे एक-एक काम करते हैं। उनके कामों में कहीं अस्तव्यस्तता नहीं। कहीं विशृङ्खलता नहीं। उस दिन जब छोटी भाभी ने घर से निकल जाने का प्रण किया था, तबके और अबके देवधर में बहुत बड़ा अन्तर हो गया है। उस समय वे बहुत-सी बातें न जानते थे।

बेटी का ब्याह करके मझली भाभी के माँ-बाप तीर्थ-यात्रा को चले गये थे। वे आज ही लौटे हैं और आते ही यह अशुभ समाचार सुन कर दौड़े आये हैं।

जब उनकी माँ, जानकी, आकर आँगन में पछाड़ खाकर गिर पड़ीं और बड़ी भाभी दौड़कर उन्हें उठाने लग गईं तो मैंने देखा, मझले भैया जड़ीभूत से अपनी जगह पर बैठे रह गये और उनकी आँखों से सावन-भादों की झड़ी लग गई। मझली भाभी के प्राण निकलने से अब तक मैंने उन्हें उदास और मौन देखा था, पर उनकी आँख में आंसू नहीं देखे थे। उनकी मौन और उदासी से उनके मनकी व्यथा का अनुमान मैं अवश्य लगाती थी, और उस दिन के स्वप्न के कारण कभी कभी यह भी सोचती थी कि क्या सचमुच भाभी अपने निश्चय को निभाकर चली गईं? यदि ऐसा ही हुआ तो क्या भैया को यह सब मालूम है?

बड़ी देर तक सान्त्वना दिलाकर भी हम लोग वृद्धा जानकी को धीरज न बँधा पाईं। उनके मुँह से एक ही बात निकलती थी—हाय! क्या मैं इसीलिए उसे छोड़ कर चली गई थी? मैं क्या जानती थी कि जिसे ब्याह कर मैं अपने को मुक्त समझ रही हूँ वह सदा के लिए मुझे मुक्त करके चली जायगी?

आँसुओं में अच्छी तरह नहाकर मझले भैया न जाने कब भीतर से निकल कर आगये। उन्हें देखकर जानकी देवी बोलीं—लल्ला मैं आगई हूँ लाओ मेरी धरोहर कहाँ है? मैं तो तुम्हें सौंप कर निश्चिंत हो गई थी,

पर तुम्हें क्या मुझे यों धोखा देना था ?

यह बात वे अत्यन्त दुख में कह गईं। वे स्वयं नहीं जानती थीं कि वे क्या कह रही हैं ?

मझले भैया—आप चाहें यों ही कह रही हों परन्तु यह बात सच है। मैंने आपके साथ विश्वास-घात किया है। यदि मैं जरा भी उसे समझ पाता तो क्या यह सब होता ? इतनी महान थी जो उसे मैंने सदा छुद्र ही समझा ! मैंने हर बात में उसका तिरस्कारही किया। मैं ही उसका अपराधी हूँ।

फिर भाभी की ओर मुंह करके बोले—भाभी, मैं ठीक कह रहा हूँ। तुम भी शायद नहीं जानतीं, वह क्या थी। तुमने तो उसका वही रूप देखा था। हाय,-हाय, वह बात कितनी ओछी और स्वार्थपूर्ण थी। छोटी बहू भी उसे थोड़ा ही जान पाई थी। उसने भी उसका इससे मिलता जुलता ही रूप देखा था। परन्तु मैं तो जानकर भी अनजान ही बना रहा—उस पर अविश्वास ही करता रहा।—परन्तु अब सब स्पष्ट है। कितना बड़ा था उसका त्याग ! कितना महान था उसका संकल्प।

शायद जानकीदेवी आंखें फाड़े देखती रहकर भी इस तमाम व्याख्या को हृदयंगम न कर सकीं। वे उसी तरह विलाप करती हुई बोलीं—तुम भी मेरी ही तरह दुखी हो, भैया। मेरी करुणा के लिए आज दुनियाँ आँसू बहाती है।

पहाड़ की चढ़ाई पर मुझे तो बाघ भी छोड़कर चला गया और उसे घर पर ही कुआँ खा गया। हाय, अभागा भाग्य!

हिमालय के कठोर हृदय से जैसे गंगा की धारा फूट पड़ी हो। उसी तरह न जाने कब की भरी हुई बड़ी भाभी के हृदय का आज बाँध खुल गया। उनके हृदय में इतना अश्रुप्रवाह रुका था, इसका मुझे अनुमान भी न था।

गीली-गीली आंखों के साथ बोझ से भारी हृदय लेकर मैं तो वहां से चल पड़ी और एक दम भीतर अपने कमरे में चली गई। कमरे में पहुँच कर तकिया पर सिर रख कर मानस-तटों को भिगोने लगी।

इसलिए बाद में क्या हुआ यह मैं कह नहीं सकती। हाँ, इतना अवश्य देखती हूँ कि अब बड़ी भाभी का हृदय एक दम बदल-सा गया है। छोटी भाभी अब उनकी सगी छोटी बहन हो गई हैं। सुधा रामू की तरह उनके पेट से पैदा हुई उनकी अपनी बेटी है। लेकिन न जाने छोटी भाभी के जी में क्या है? वे अपने आपको जैसे बचाती फिर रही हैं। वे जिस प्रकार अपनी जेठानी का कोप और उनकी भर्त्सना ओड़ लेती थीं, और फिर भी हँसती रहती थीं, कभी शिकायत न करती थीं, उसी प्रकार उनके प्यार और दुलार को अंचल पसार कर नहीं ले पा रही हैं। ऐसे अवसर पर वे कुंठित हो जाती हैं। अपने को विलग कर लेती हैं।

भाभी

मैं रात-रात भर कई दिनों से जाग रही हूँ । आज कल मेरी आँखों में नींद नहीं है । मेरा गौना होने की बात जो एकाएक चल पड़ी है । यह भी है, पर नींद न आने के और भी कारण हैं । मेरे सामने बड़े भैया हैं । उनका वाह्य और अन्तर्जगत का आन्दोलन है । इसके बाद मझले भैया हैं । वे अपने को सबसे भरा-पूरा प्रदर्शित करते हुए भी भीतर से एकदम शून्य हैं । उनके अन्दर की वह रिक्तता पानी पर तेल की तरह तैर आती है ।

मैं सोचने लग जाती हूँ कि सब तो बिगड़-बिगड़ कर सुधर गये पर मझले भैया ऐसे बिगड़े कि उनके जीवन-पथ पर अब आलोक की एक किरण भी नहीं है। नहीं मालूम कभी उनके दिन फिरेंगे भी ? कभी फिर वे हरे-भरे जीवन में घूमने फिरने लायक हो सकेंगे कि नहीं ?

पहाड़ की चढ़ाई पर मुझे तो बाघ भी छोड़कर चला गया और उसे घर पर ही कुआँ खा गया। हाय, अभागा भाग्य!

हिमालय के कठोर हृदय से जैसे गंगा की धारा फूट पड़ी हो। उसी तरह न जाने कब की भरी हुई बड़ी भाभी के हृदय का आज बाँध खुल गया। उनके हृदय में इतना अश्रुप्रवाह रुका था, इसका मुझे अनुमान भी न था।

गीली-गीली आंखों के साथ बोझ से भारी हृदय लेकर मैं तो वहां से चल पड़ी और एक दम भीतर अपने कमरे में चली गई। कमरे में पहुँच कर तकिया पर सिर रख कर मानस-तटों को भिगोने लगी।

इसलिए बाद में क्या हुआ यह मैं कह नहीं सकती। हाँ, इतना अवश्य देखती हूँ कि अब बड़ी भाभी का हृदय एक दम बदल-सा गया है। छोटी भाभी अब उनकी सगी छोटी बहन हो गई हैं। सुधा रामू की तरह उनके पेट से पैदा हुई उनकी अपनी बेटी है। लेकिन न जाने छोटी भाभी के जी में क्या है? वे अपने आपको जैसे बचाती फिर रही हैं। वे जिस प्रकार अपनी जेठानी का कोप और उनकी भर्त्सना ओढ़ लेती थीं, और फिर भी हँसती रहती थीं, कभी शिकायत न करती थीं, उसी प्रकार उनके प्यार और दुलार को अंचल पसार कर नहीं ले पा रही हैं। ऐसे अवसर पर वे कुंठित हो जाती हैं। अपने को विलग कर लेती हैं।

भाभी

मैं रात-रात भर कई दिनों से जाग रही हूँ । आज कल मेरी आँखों में नींद नहीं है । मेरा गौना होने की बात जो एकाएक चल पड़ी है । यह भी है, पर नींद न आने के और भी कारण हैं । मेरे सामने बड़े भैया हैं । उनका बाह्य और अन्तर्जगत का आन्दोलन है । इसके बाद मझले भैया हैं । वे अपने को सबसे भरा–पूरा प्रदर्शित करते हुए भी भीतर से एकदम शून्य हैं । उनके अन्दर की वह रिक्तता पानी पर तेल की तरह तैर आती है ।

मैं सोचने लग जाती हूँ कि सब तो बिगड़-बिगड़ कर सुधर गये पर मझले भैया ऐसे बिगड़े कि उनके जीवन-पथ पर अब आलोक की एक किरण भी नहीं है । नहीं मालूम कभी उनके दिन फिरेंगे भी ? कभी फिर वे हरे-भरे जीवन में घूमने फिरने लायक हो सकेंगे कि नहीं ?

[१०]

आखिर वह दिन आ ही गया। अब तो मुझे यह घर छोड़ कर आज जाना ही पड़ेगा। वे सब बाहर बैठे हैं। मेरा हृदय भीतर ही भीतर कुछ और हो रहा है। अच्छा लग रहा है या बुरा यह कहा नहीं जा सकता।

सरन ने मेरे हाथ-पाँवों में मेंहदी और महावर रचाए हैं। चोटी में फूल दे देकर छोटी भाभी अपने हाथ से गूँथेंगी। इसलिए उन्होंने इस काम से सरन को जान-बूझ कर छुट्टी दे दी है।

बड़ी भाभी अन्य कई स्त्रियों के साथ तैयारी में लगी हैं। छोटे भैया कभी भीतर आकर पान के बीड़े ले जाते हैं, कभी सिगरेट के बक्स। बड़े भैया लकड़ी की चौकी पर दीवार का सहारा लिये बैठे बड़ी शान्ति के साथ अपना हुक्का पी रहे हैं,—या शायद कुछ सोच रहे हैं।

मैं अपने को असहाय और एकाकी सा क्यों पा रही हूँ, समझ में नहीं आ रहा । नये-नये भाव, नई दुनियां और नये जीवन की रंगबिरंगी कल्पनाएँ चारों ओर घूम रही हैं पर तो भी हृदय में उत्साह नहीं है । एक उदासी सी घिर रही है । एक अस्थिरता रोम-रोम को आन्दोलित किये दे रही है । सुधा और रामू पास ही बैठ कर फूलों के हार गूँथ रहे हैं । कभी-कभी दोनों एक ही फूल के लिए लड़ने भी लगते हैं; पर मेरा ध्यान उधर नहीं है । स्नान करने के बाद मैं अपने बाल भी अच्छी तरह नहीं सुखा सकी हूँ ।

छोटी भाभी बीमारी से उठने के कारण अभी कमजोर हैं । घर का काम-काज उनसे पहले जैसी फुर्ती से नहीं होता , पर आज वे भी सवेरे से व्यस्त हैं । इधर कई दिनों से मेरे पास से निकलते निकलते जो चुटकियां भरती जाती थीं , आज वे भी अब तक मेरे पास नहीं आ सकी हैं ।

आखिर भाभी आईं और आते ही मुझे अन्यमनस्क देखकर बोलीं—अरे यह क्या, अभी तक ऐसी ही बैठी हो ? ध्यान कर रही हो क्या ?

मैं—रहने भी दो ।

भाभी—तो क्या करूँ ?

भाभी—अपने को सजाओ । कामिनियों के अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे करो ।

मैं—चलो-चलो ।

भाभी—नहीं, मैं सच कहती हूँ । हँसी नहीं करती । विजय और पराजय का आज ही तो निर्णय होना है । पुरुष पर नारी के पहले पुष्पवाण का निशाना अचूक न बैठने से फिर वह जीवन भर बेकार रहता है ।

मैं आखिर हँस ही पड़ी । मैंने कहा—भाभी, मालूम पड़ता है तुम्हारा निशाना ठीक ठीक बैठा था ।

भाभी उत्तर दें-दें तब तक वहां न जाने कौन-कौन आ पहुंचा । क्षण भर में ही मैं अपनी सहेलियों, पड़ोसिनों और अन्य स्त्रियों से घिर गई । सबने मुझे चारों ओर से घेर लिया ।

इन सब में मेरी एक बाल्यसहचरी कल्याणी भी है । चार पांच बरस के बाद उसे अचानक देखकर मैं चकित होकर पूछ उठी—अरे ! कल्याणी, यहाँ कैसे ? कब आई ?

कल्याणी—तुमने तो नहीं बुलाया । ब्याह कर लिया और अब गौने भी जा रही हो, पर मुझे तो पूछा भी नहीं ।

मैं—पर मरी या जीती कल्याणी का पता भी होता तब न ।

कल्याणी—तभी तो मैं आ पहुँची हूं । अब तुम्हीं कहो मैं मरी हूँ या जीती ?

मैंने उसका हाथ पकड़कर बैठा लिया और कहा—सच कहो कल्याणी बहिन, क्या इतने दिनों तुम नागपुर ही थीं ?

बड़ी दुबली हो गई हो। ऐसी कौन-सी चिन्ता ने तुम्हें घेर लिया है? मैं तो सुनती थी—

कल्याणी बीच ही में बोल उठी—सुनती थी कि आनंद में हूँ। मौज उड़ाती हूँ। कुछ झूठ नहीं है इसमें। मैं अपने घर में राज करती हूँ। एक बारह बरस का, एक चौदह बरस का, दो बेटे हैं। अपनी बराबर की एक बेटी है। इसी साल उसका व्याह किया है। छोटे देवर की अवस्था करीब चालीस होगी। बड़े की पाँच अधिक। इतने विनीत हैं कि मैं रात को प्रभात कहूँ तो मान लेंगे और दिन को रात कहूँ तो इनकार न करेंगे। स्वामी तो देवता ही हैं। उम्र भी पचास से अधिक नहीं। घर चांदी-सोने से भरा पड़ा है। उस सोने की लंका की मैं अकेली रानी हूँ। कितना सुख है मुझे?

इतनी जल्दी में वह यह सब कह गई कि मैं रोक भी न सकी। जब उसने समाप्त किया तो तीन बरस पहले की कल्याणी मेरी आँखों के सामने आगई। वही चंचल-चंचल, भोली-भाली और नटखट कल्याणी! मुझे यह भी ध्यान आगया कि उसका व्याह किसी वयस्क से होने की बात चल रही थी। पीछे क्या हुआ था, यह सोचती हूँ तो याद पड़ता है कि वह अपने चाचा-चाची के साथ गाँव चली गई थी। वहीं उसका व्याह हुआ था। व्याह कर वह नागपुर गई थी, तभी से शायद अब घर आई है।

कल्याणी थोड़ी देर ठहर कर फिर बोली—इतने सुख में पल कर भी मैं तुम्हें दुर्बल दिखती हूँ तो मैं कहूँगी तुम्हारी आँखों में रोग है।

मैं उसके मुंह की ओर ताक रही थी। परन्तु उसके चेहरे पर विकार कहाँ था? उसकी वाणी में व्यंग्य का आभास भी मुझे नहीं मिला, परन्तु वह जो कुछ कह रही थी उसके शब्द-शब्द में किसी क्रन्दन का हाहाकार था, जिसने मेरे हृदय को इतनी ही देर में मथ डाला। मुझसे नहीं रहा गया। उन स्त्रियों से भरे कमरे में से मैं कल्याणी का हाथ पकड़कर उसे भीतर अपने कमरे में उठा ले गई। मैं कुछ कहूँ इससे पहले ही उसने मुझे दोनों भुजाओं में भर लिया और हिलक-हिलक कर रोने लगी। मैं भी उससे लिपट गई और उसे अच्छी तरह रो लेने दिया। अब मुझे न तो कुछ पूछने की जरूरत मालूम पड़ी, न उसे कुछ कहने की। अच्छी तरह हृदय के भार को हलका कर लेने के बाद उसने बिना कुछ कहे ही मुझे छोड़ दिया। मैं और वह दोनों बाहर आगई—निःशब्द और मौन।

इस बीच स्त्रियाँ आती जाती रहीं। केवल कल्याणी को ही मैंने जाने न दिया। उसे मैंने अपने ही पास रख लिया। उसने और छोटी भाभी ने मिलकर मेरे केश गूँथे। जब केश गूँथे जा चुके तो कल्याणी दोनों हाथों से मेरा मुंह पकड़ कर शीशे के सामने करके बोली—देख तो ले,

कैसा लगता है ?

मैंने उसके गाल पर एक हलका तमाचा जड़कर कहा—बता, कैसा लगता है ?

कल्याणी—बिल्कुल बँदरी जैसा। सिर्फ पूँछ की कसर है।

मैं—दुर बिल्ली !

कल्याणी—बिल्ली, बिल्कुल नहीं। ठीक बँदरी जैसा, क्यों भाभी ?

भाभी को तो इस कल्याणी ने इतनी ही देर में हँसा हँसाकर परेशान कर दिया था। इस बात से तो वे लोट-पोट होगईं। मैं भी तो उस अभागी की बातों पर हँस बिना नहीं रह पाती थी।

इतने ही में आँगन में बड़े भैया और मझले भैया में एक दूसरा ही विषय चल पड़ा। बड़े भैया जब बैठे थे, तभी उन्होंने आकर उनके पैर छूकर प्रणाम किया।

बड़े भैया ने अकचका कर उनकी पीठ पर हाथ रख दिया और पूछा—क्यों श्रीधर क्या हुआ ?

मझले भैया ने कहा—भैया, आप केवल मेरे बड़े भाई ही नहीं हैं। पिता भी हैं। मेरे संरक्षक हैं। आपके मेरे ऊपर बड़े-बड़े एहसान हैं। उनसे उऋण होना असंभव है। मैं उनसे उऋण होना भी नहीं चाहता। अब मैं आपसे एक बात और माँगता हूँ।

बड़े भैया हैरत में थे। क्या कहें, क्या न कहें।

आखिर बोले—श्रीधर,कहते क्या हो? तुम को क्या होरहा है?

मझले भैया—सुधा एक बाधा थी। मैंने देख लिया है। वह बाधा अब नहीं है। एक माँ उसे छोड़कर चली गई। तो उसने दो माताएँ पा ली हैं। इसी घर में। बड़ी भाग्यवती है वह।– अब मैं सब तरह से स्वतंत्र हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये। इस गृहस्थी के झंझट से अब आप मुझे उबार दीजिये।

बड़े भैया–तुम्हें क्या हो गया है, श्रीधर?

मझले भैया— हो कुछ नहीं गया है। मेरे लिए अब गृहत्याग के सिवा और किसी में कल्याण नहीं है। आपने अपनी ओर से मुझे गृहस्थ बनाने में क्या उठा रक्खा है। जो पिता भी अपने बच्चे के लिए नहीं कर पाते वह आपने मेरे लिए किया। परन्तु परमात्मा को वह मंजूर नहीं था। उसे मेरे लिए वैराग्य ही अच्छा लगता था। वही उसने मेरे हिस्से में रख दिया। परमात्मा की उस देन को मैं किस मुंह से अस्वीकार करूँ?

बड़े भैया—भाई, अभी तुम्हारी उमर ही क्या है? अभी तुमने संसार का क्या सुख देखा है? प्रिय-वियोग से दुख होता ही है, पर इसीलिए तो संसार त्याज्य नहीं मान लिया जाता। विराग तो उसी के लिए है जिसने अपने कर्तव्य को पूरी तरह निवाह दिया है। बाकी तो दुनियाँ के रणक्षेत्र से

पीठ दिखा जाना है ।

मैं, भाभी और कल्याणी यह सब सुन रही थीं। मझले भैया के लिए मेरा हृदय कई दिनों से दुखी और चिन्तित हो रहा था। आज उन्हें इस प्रकार अनायास घर-बार छोड़कर निकल जाने की इच्छा करते देख मेरा जी उद्वेलित हो उठा। उनके हृदय की मूक वेदना का क्रंदन मुझे अपने रोम रोम से सुन पड़ने लगा। जी में आया कि मैं अभी लिपट कर उनसे अच्छी तरह रो लूँ! न जाने फिर कभी भैया मुझे मिलेंगे भी कि नहीं ?

मझले भैया कुछ देर शान्त बैठे रहे। फिर बोले— भैया, अब आप मुझे रोकिये नहीं। भगवान की राह पर मुझे जाने दीजिये। मैं देख रहा हूँ कि कल्याण का पथ मेरे लिए तैयार है और मुझे अब उस पर जाना ही है।

बड़े भैया उसी तरह दृढ़ता के साथ कहने लगे—श्रीधर, तुम यह न समझो कि मैं मोहवश तुम्हें खींच रहा हूँ। यदि सचमुच मैं समझ सकता कि गृहत्याग तुम्हारे लिए एक मात्र श्रेय है तो मैं कह देता, भाई जाओ तुम मुक्त हो।

मझले भैया—तो बाधा क्या है ?

बड़े भैया—मैं यह देख रहा हूँ कि अभी आत्मशान्ति की तैयारी में लगने की भी तुम्हें आवश्यकता है। यह भी एक तपस्या है। जब तक यह पूर्ण नहीं हो जाती

तब तक यह सब इधर-उधर मन भटकाने के समान है। गृहस्थ जीवन तो सबसे बड़ी त्याग की वेदी है। इसी पर तुम अपनी इच्छाओं और अभिलाषाओं को चढ़ाना सीखो।

मझले भैया ज्यों के त्यों बैठे रहे। जैसे ये सब बातें उनके हृदय के भीतर तक न पहुंची हों। थोड़ी देर ठहर कर बड़े भैया फिर बोले—आज बिनू ससुराल जा रही है। मैं अपने भीतर, और घर के भीतर, अभी से एक रिक्तता अनुभव करने लगा हूँ। जब वह सचमुच ही चली जायगी तब तो और भी यह उदासी हमें परास्त कर लेगी। तिस पर तुम अपने इस इरादे को जोर देकर मेरे सामने रख रहे हो। अब बताओ, मैं क्या करूँ? मेरे लए घर के किस कोने में शान्ति है?

न मालूम बड़े भैया और क्या क्या कहते क्योंकि इस समय वे बहुत कुछ कहने के भाव में थे परन्तु भैया देवधर ने किसी काम से उन्हें बाहर बुला लिया। वे बिना कुछ आगे कहे उठकर चले गये। भैया श्रीधर तद्वत् बैठे रहे।

मुझे नहीं सूझ रहा था कि मैं किस प्रकार मझले भैया से बातचीत आरंभ करूँ। आज तक कभी उनसे बोलने में संकोच मेरे बीच में नहीं पड़ा था। एक बच्ची जैसे बड़ों से बोलती और झगड़ती है, उसी तरह मैं उनसे करती थी! आज मैं दो एक बार झिझककर उनसे यों कहने को तैयार हो सकी—भैया, मुझे लेने कब आओगे?

मेरे मुँह से बड़ी मुश्किल से इतना निकल सका। मैं खुद नहीं जानती थी कि मैं बरसाती बादल की तरह भरी खड़ी हूँ। उपरोक्त शब्दों के साथ मेरा कंठ रुक गया और आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई।

भाभी और कल्याणी ने मुझे तनिक भी सहारा नहीं दिया। शायद उनके हृदय में भी कुछ हलचल हो रही होगी।

मुझे रोते देखकर मझले भैया मेरी ओर खिसक आये और मेरी पीठ ठोकने लगे और बोले—बिनू, तू रोती क्यों है? मैं जल्दी ही आकर तुझे ले आऊँगा।

मैंने चुपचाप रोते-रोते सब सुन लिया। मेरे मुंह से यह तक न निकला—तुम स्वयं जाने को उद्यत हो रहे हो तो मुझे लाकर क्या करोगे? जिस घर में तीन भाइयों के बीच में अकेली बहिन होकर रही हूँ. सदा सबका लाड़ प्यार पाया है. वहीं तुम मुझे छोड़कर आप सन्यास लेकर निकल जाओगे?

मुझे इस तरह रोती देखकर वे बड़े नीतिज्ञ की भाँति बोले—बड़ी पगली है तू। अपने घर जाते समय कोई रोता है? यही तेरी बुद्धि है।

फिर छोटी भाभी को लक्ष्यकर बोले—देवधर की बहू, इसे समझा तो। रोने से इसकी तबियत खराब होगी। बहुत दूर जाना है।—इसने कुछ खाया-पिया भी है?

छोटी भाभी ने हाथ के इशारे से बताया—अभी कुछ

नहीं खाया है इन्होंने ।

कल्याणो ने भाभी के संकेत का भाष्य करके संक्षेप में बताया—ये तो रात से ऐसी ही हैं ।

भैया—तो तुम लोग पहले इसे थोड़ा बहुत खिला दो। बड़ी भाभी को तो आज फुर्सत नहीं है । वे काम में लगी हैं ।

कल्याणी मुझसे बोली—चलो, तुम कुछ खा लो ।

मैं उसी तरह रुआसे स्वर में बोली—मुझे भूख नहीं।

भैया—भूख क्यों नहीं ? तुम इसे ले जाओ और जितना भावे उतना खिला दो । अब समय हो रहा है। बहुत देर नहीं है ।

मेरे 'नहीं-नहीं' करते रहने पर भी कल्याणी मुझे पकड़ ले गई और ले जाकर छोटी भाभी के कमरे में फर्श पर बिठा दिया । छोटी भाभी से कहा—भाभी, तुम ले आओ, मैं इसे खिलाऊँगी । अपने हाथों से । दुलहिन क्या अपने हाथ से कभी खाती है ?

इसके बाद मैंने, जैसा भाया, थोड़ा बहुत भोजन किया। न करती तो क्या कल्याणी के मन को दुखा देती ? इतने दिन बाद तो मिली थी, और अभी अभी उसके कितने दुखमय जीवन का आभास मिल चुका था ? मेरे से उसे दो घड़ी हँस-खेलकर उस जीवन-व्यापी कथा को भूल जाने का अवसर मिल सके उसे मैं क्यों जाने

देती। भोजन में बड़ी प्रसन्नता से उसने मेरा साथ दिया। इससे वह और भी स्वादिष्ट हो उठा।

खा-पी चुकने पर शीघ्र ही मुझे कपड़े पहन कर तैयार हो जाने का आदेश मिला। मैं जो-जो नहीं पहनना चाहती थी, वे-वे कपड़े-लत्ते पहनकार कल्याणी और छोटी भाभी ने मुझे पूरी गुड़िया बना दिया। उनके इस स्नेह-पूर्ण अत्याचार को मैंने सिर झुकाकर बरदाश्त कर लिया और मैं अब जाने के लिए प्रस्तुत हूँ।

गाड़ी द्वार पर आकर लग गई है। मेरी ससुराल से मेरे स्वामी के साथ जो जो आये हैं वे सभी तैयार हैं। अब तक तो यों ही लग रहा था, पर अब जब सचमुच ही मैं जाने को तैयार हूँ, तो मेरा हृदय भीतर से उमड़ने लगा है। कभी छोटी भाभी से, कभी बड़ी भाभी से, कभी कल्याणी से और कभी आई हुई दूसरी दूसरी परिचित स्त्रियों से मैं रोती-रोती मिलने भेंटने लगी। भैया देवधर से भेंटने के बाद मैं बड़े भैया के गले से लगकर कितनी देर तक रोती रही पता नहीं। जब उन्होंने मुझे पुचकार कर कहा—जाओ। बहिन, जाओ। अपने घर जाओ। आज ही तो तुम अपने घर जा रही हो। हम पराये लोगों की ममता को अब धीरे-धीरे तुम्हें छोड़ देना होगा।

यह मुझसे न सुना गया। मेरी हिलकी बँध गई।

में और भी वेग से रोने लगी, तथा बड़े भैया को मैंने कसकर पकड़ लिया। उन्होंने फिर मुझे समझाया—रानी-बेटी, तुम तो समझदार हो। लो, देवधर तुम इसे गाड़ी पर बैठा दो।

इतना कहते-कहते उनका गला भर आया। भैया देवधर ने मेरी बाँह पकड़कर कहा—चलो, विनू। अब देरी न करो।

मैंने बड़े भैया को छोड़कर बहुत देखा पर भैया श्रीधर मुझे दिखाई न दिये। मेरे मुँह से निकला—मझले भैया कहाँ हैं?

बड़े भैया बोले—बहिन, मझले भैया से तुम्हारा मिलना शायद ही हो। तुम्हारे साथ ही वे भी आज घर छोड़ रहे हैं।

मेरी आँखों से तो आँसू झर ही रहे थे। बड़े भैया की आँखों से भी दो बूँद आँसू गिर पड़े। मैं कल्याणी के हाथ सहारा लेकर गाड़ी पर चढ़ गई, सिर टेक कर घर को मन ही मन प्रणाम किया। बस, गाड़ी चल पड़ी। चलती गाड़ी में मेरे स्वामी भी आकर मेरे पास ही बैठ गये।

दूर— बहुत दूर पर, मझले भैया जैसा कोई चला जा रहा था। उसकी कोपीन देखकर मेरे हृदय से एक आह निकल गई। अन्तर्यामी को छोड़कर, मेरे मन की शून्यता के सिवा उसे सुनने वाला शायद वहाँ उस समय और कोई न था—पास बैठे हुए मेरे स्वामी भी नहीं!